



न्यायालय

सहायक कलक्टर/उपखण्ड अधिकारी

गुडामालानी-बाड़मेर

(पीठासीन अधिकारी -केशव कुमार मीना आर.ए.एस.)

वाद संख्या:-2020 / 00327

दर्ज तिथि:-04.12.2020

1. मेथोदेवी पुत्री खेताराम पत्नी पीराराम
जाति जाट निवासी आलपुरा तहसील गुडामालानी।

.....वादीगण

बनाम

1. खेताराम पुत्र डूंगराराम
जाति जाट निवासी आलपुरा तहसील गुडामालानी जिला बाड़मेर।
2. मैनेजर एस0बी0बी0जे बैंक शाखा गुडामालानी
3. राजस्थान सरकार जरिये तहसीलदार गुडामालानी
4. हनुमानराम पुत्र खेताराम
5. दुर्गाराम पुत्र खेताराम
6. लिखमाराम पुत्र खेताराम
7. कृष्ण कुमार पुत्र खेताराम नाबालिग की कुदरती वलिदा माता झीमोदेवी पत्नी खेताराम
जाति जाट निवासी आपलरु तहसील गुडामालानी जिला बाड़मेर।

.....प्रतिवादीगण

उपस्थित अधिवक्ता

वादी:-श्री हरीश चौधरी

प्रतिवादी:-जगदीश विश्नोई

राजस्व वाद अन्तर्गत धारा-88, 188

राजस्थान काश्तकारी अधि0-1955

:-निर्णय:-

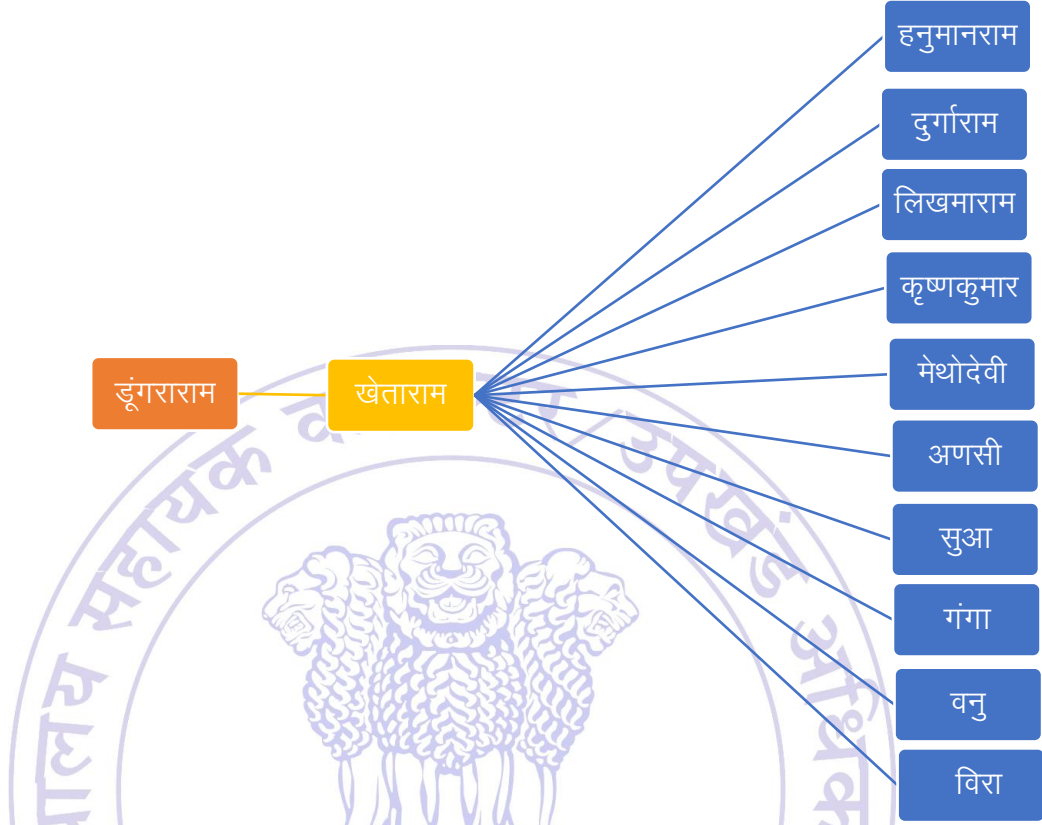
दिनांक:-26.12.2025

1. आज यह पत्रावली वाद पत्र बाबत् इस्तकराहक्क अन्तर्गत धारा-88, 188 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम-1955 का वास्ते निर्णय हेतु पेश हुई। वाद पत्र का सूक्ष्म वृतान्त इस प्रकार से है:-

- कि वादिनी ने निवेदन किया गया कि मुताबिक राजस्व रिकॉर्ड मौजा आलपुरा पटवार मण्डल तहसील गुडामालानी में अवस्थित मुतनाजा आराजी खसरा संख्या 46/2 रकबा 14-15 बीघा, खसरा संख्या 52 रकबा 0-02 बिघा, खसरा संख्या 53/6 रकबा 20-08 बीघा आई हुई है।



- कि वादिनी और प्रतिवादी संख्या 01, 04-07 का एक ही संयुक्त परिवार है। वादिनी व प्रतिवादी हिन्दू विधि से शासित होते हैं। उक्त संयुक्त परिवार का एक ही पुरुष पूर्वज डूंगराराम है। जिसका वंशवृक्ष निम्न प्रकार है-



- कि उक्त मुतनाजा आराजी वादिनी व प्रतिवादीगण के पूर्वज डूंगराराम की पैतृक आराजी थीं। डूंगराराम के फौत होने पर संपत्ति की विरासत उनके स्थान पर उनके पुत्र खेताराम के नाम विरासत दर्ज हुई। उक्त वादग्रस्त आराजी में वादिनी हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-06 व 08 के तहत प्रथम श्रेणी की वारिस होने के आधार पर राजस्थान काश्तकारी अधिनियम-1956 की धारा-40 के तहत हिस्सा 1/11 की खातेदारी घोषणा करवाने का वाद पेश किया है।
- कि वादग्रस्त पैतृक आराजी में हिन्दू उत्तराधिकारी अधिनियम-1956 की धारा-06 व 08 के अनुसार हिन्दू पुरुष के पुत्र, पुत्री, पौत्र, पौत्री का सहदायिकी व पैतृक संपत्ति में जन्म से ही अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। पुत्र व पुत्री दोनों अपने माता-पिता के जीवनकाल में ही जोत का विभाजन करवा सकते हैं। सहदायिकी व पैतृक संपत्ति में माता-पिता के साथ-साथ पुत्र व पुत्री भी सहकृषक होते हैं। इस प्रकार वादिनी वादग्रस्त आराजी में हिस्सेनुसार घोषणा करवाने की अधिकारी है।
- कि वादिनी और प्रतिवादी संख्या 01, 04-07 के पूर्वपुरुष खेताराम की जायन्दा संतान व वारिसान है। प्रतिवादी संख्या 01 खेताराम अनपढ़ और वर्तमान में वृद्ध है। प्रतिवादी संख्या 01 पैतृक वादग्रस्त आराजी में अपने नाम के राजस्व रिकॉर्ड का फायदा उठाकर उक्त वादग्रस्त आराजी किसी अजनबी व्यक्ति को बेचान करने पर उतारू है।

- कि प्रतिवादी संख्या 01 वादिनी को सहदायिकी व पैतृक भूमि से अपने हक हिस्से से वंचित रखने हेतु प्रयासरत है एवं वादिनी को कब्जे काश्त की भूमि, रहवासी ढाणी से बेदखल करना चाहता है। प्रतिवादी संख्या 01, 04-07 वादिनी के हिस्से 1/11 में हस्तक्षेप, दखलअंदाजी एवं कब्जे काश्त की भूमि में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं करने का स्थाई निषेधाज्ञा से प्रतिवादी संख्या 01, 04-07 को पाबंद करने की अधिकारी है।
2. वाद पत्र दर्ज रजिस्टर किया जाकर प्रतिवादी को जरिये सम्मन तलब किया गया। प्रतिवादी संख्या 01 व 04 से 07 विधिवत तामिल बाद असालतन वकालतन उपस्थित न्यायालय होकर जवाब दावा मय काउन्टर क्लेम प्रस्तुत कर निवेदन किया:-
- कि प्रतिवादी संख्या 01 का खातेदारी खेत खसरा संख्या 46/2 रकबा 14-15 बीघा, 52 रकबा 0-02 बीघा, 53/6 रकबा 20-08 बीघा मौजा आलपुरा तहसील गुड़ामालानी में आया हुआ है। प्रकरण में वादिनी द्वारा जो वंशवृक्ष बनाया गया वह गलत है एवं वादिनी को प्रतिवादी संख्या 01 की पुत्री गलत बताया गया है।
 - कि वादग्रस्त आराजी में प्रतिवादी संख्या 01, 04-07 का ही कब्जा काश्त है। दिनांक 09.12.2020 को प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा अपने ही पुत्रों प्रतिवादी संख्या 04 से 07 को उक्त वादग्रस्त आराजी में से 4/5 हिस्सा जरिये दानपत्र अंतरण की गई। इस प्रकार प्रतिवादी संख्या 04 से 07 के 4/5 हिस्से के नाम की घोषणा की जाकर सहखातेदार घोषित किया जावे।
 - कि वादिनी तरबिती पक्षकार है एवं प्रतिवादी खेताराम की जायन्दा पुत्री नहीं है। वर्तमान समय में वादिनी अजनबी व्यक्ति बनकर घोषणा का वाद पेश किया है। अजनबी पक्षकार को दावा पेश करने का अधिकारी नहीं होने के कारण उक्त प्रकरण को मयखर्चा खारिज फरमाया जावे।
 - कि उक्त वादग्रस्त आराजी का प्रतिवादी संख्या 01 ही स्वामी है इसलिए प्रतिवादी संख्या 01 मालिक की हैसियत उक्त आराजी को हस्तान्तरण करने का संपूर्ण अधिकार है। जिसके विरुद्ध वादिनी को स्थाई निषेधाज्ञा लाने का कोई अधिकार नहीं है।
3. प्रकरण में वादीगण के वादपत्र एवं प्रतिवादीगण के जबाबदावा के अवलोकन पश्चात प्रकरण में निम्न प्रकार से तनकीयात कायम किये गये:-
1. आया वादीया हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 के तहत विधिक वारिस होने के आधार पर मुतनाजा आराजी पर मुताबिक हिस्सा खातेदारी अधिकारों की घोषणा प्राप्त करने के अधिकारी है।
.....वादीया
 2. आया वादीया हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 के तहत विधिक वारिस होने के आधार पर मुतनाजा आराजी पर मुताबिक हिस्सा खातेदारी अधिकारों की घोषणा प्राप्त करने के आधार पर विरुद्ध प्रतिवादी मुताबिक वादपत्र वर्णित अनुतोष स्थाई निषेधाज्ञा प्राप्त करने के अधिकारी है।
.....वादीया

3. आया प्रतिवादी संख्या 04 लगायत 07 माफिक दानपत्र दिनांक 09.12.2020 मुतनाजा आराजी में 4/5 हिस्से की खातेदारी अधिकारों की घोषणा प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

.....प्रतिवादीगण

4. अन्य दादरसी

.....उभय-पक्षकारान

4. प्रकरण में उक्त प्रकार से कार्यवाही किये जाने पर विचारण आरम्भ किया गया। प्रकरण में वादीगण द्वारा साक्ष्य स्वरूप निम्न दस्तावेज प्रस्तुत कर प्रदर्श अंकित किए-

दस्तावेज	संवत / विवरण	प्रदर्श
नामान्तरकरण	नामान्तरकरण संख्या 173 ग्राम आलपुरा	प्रदर्श-01
जमाबंदी	खाता संख्या 55 संवत 2072-2075	प्रदर्श-02
नक्शा	आंशिक नक्शा ट्रेस वादग्रस्त खसरे	प्रदर्श-03
जमाबंदी	खाता संख्या 173 संवत 2076-2079	प्रदर्श-04
प्रमाण पत्र	कार्यालय ग्राम पंचायत आलपुरा पं.स. धोरीमना पत्रांक ग्राप / 2007-08 / 80 दिनांक 16.04.2007 द्वारा जारी	प्रदर्श-05
जनआधार कार्ड पर्ची	मेथोदेवी माता झीमो पिता खेताराम	प्रदर्श-06

5. प्रकरण में वादीगण द्वारा साक्ष्य स्वरूप निम्न गवाह प्रस्तुत किए-

नाम	जाति	निवासी	गवाह
मेथो पुत्री खेताराम पत्नी पीराराम	जाट	आलपुरा	पी0डब्ल्यू-1
हेमी देवी पत्नी भेराराम	जाट	आलपुरा	पी0डब्ल्यू-2
खेताराम पुत्र रावताराम	जाट	ढीमडी	पी0डब्ल्यू-3

6. प्रकरण में वादीगण के गवाह पी0डब्ल्यू-1 मेथो पुत्री खेताराम पत्नी पीराराम, पी0डब्ल्यू-2 हेमी देवी पत्नी भेराराम, पी0डब्ल्यू-3 खेताराम पुत्र रावताराम द्वारा हलफनामा प्रस्तुत कर समान रूप से निम्न प्रकार कथन किये-

- कि वादिनी ने निवेदन किया गया कि मुताबिक राजस्व रिकॉर्ड मौजा आलपुरा पटवार मण्डल तहसील गुड़ामालानी में अवस्थित मुतनाजा आराजी खसरा संख्या 46/2 रकबा 14-15 बीघा, खसरा संख्या 52 रकबा 0-02 बिघा, खसरा संख्या 53/6 रकबा 20-08 बीघा आई हुई है।
- कि उक्त मुतनाजा आराजी वादिनी व प्रतिवादीगण के पूर्वज डूंगराराम की पैतृक आराजी थीं। डूंगराराम के फौत होने पर संपत्ति की विरासत उनके स्थान पर उनके पुत्र खेताराम के नाम विरासत दर्ज हुई। उक्त वादग्रस्त आराजी में वादिनी हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-06 व 08 के तहत प्रथम श्रेणी की वारिस होने के आधार पर राजस्थान काश्तकारी अधिनियम-1956 की धारा-40 के तहत हिस्सा 1/11 की खातेदारी घोषणा करवाने का वाद पेश किया है।

- कि वादग्रस्त पैतृक आराजी में हिन्दू उत्तराधिकारी अधिनियम-1956 की धारा-06 व 08 के अनुसार हिन्दू पुरुष के पुत्र, पुत्री, पौत्र, पौत्री का सहदायिकी व पैतृक संपत्ति में जन्म से ही अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। पुत्र व पुत्री दोनों अपने माता-पिता के जीवनकाल में ही जोत का विभाजन करवा सकते हैं। सहदायिकी व पैतृक संपत्ति में माता-पिता के साथ-साथ पुत्र व पुत्री भी सहकृषक होते हैं। इस प्रकार वादिनी वादग्रस्त आराजी में हिस्सेनुसार घोषणा करवाने की अधिकारी है।
 - कि वादिनी और प्रतिवादी संख्या 01, 04-07 के पूर्वपुरुष खेताराम की जायन्दा संतान व वारिसान है। प्रतिवादी संख्या 01 खेताराम अनपढ़ और वर्तमान में वृद्ध है। प्रतिवादी संख्या 01 पैतृक वादग्रस्त आराजी में अपने नाम के राजस्व रिकॉर्ड का फायदा उठाकर उक्त वादग्रस्त आराजी किसी अजनबी व्यक्ति को बेचान करने पर उतारू है।
 - कि प्रतिवादी संख्या 01 वादिनी को सहदायिकी व पैतृक भूमि से अपने हक हिस्से से वंचित रखने हेतु प्रयासरत है एवं वादिनी को कब्जे काश्त की भूमि, रहवासी ढाणी से बेदखल करना चाहता है। प्रतिवादी संख्या 01, 04-07 वादिनी के हिस्से 1/11 में हस्तक्षेप, दखलअंदाजी एवं कब्जे काश्त की भूमि में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं करने का स्थाई निषेधाज्ञा से प्रतिवादी संख्या 01, 04-07 को पाबंद करने की अधिकारी है।
 - इसके समर्थन में वादी द्वारा पैरा-05 में अंकित दस्तावेज प्रदर्श करवाएं हैं।
7. प्रकरण में पी0डब्ल्यू-01 मेंथो पुत्री खेताराम पुत्री पीराराम ने दौराने प्रतिपरीक्षण अभिकथन किए कि मेरा निवास स्थान ढीमड़ी, बांटा है। यह कहना सही है कि डूंगरा वगैरा चार भाई थे। चारों भाई के नाम हड़मान, दुर्गा, कृष्ण और लिखमाराम था। मेरी दादी का नाम मुझे पता नहीं है। खेताराम के चार बेटे हैं। खेताराम के चार बेटों का नाम लिखमा हड़मान दुर्गा कृष्ण है। शपथ पत्र कितनी तारीख को पेश किया मुझे याद नहीं है। 2020 में पेश किया। उक्त शपथ पत्र पर पहचान हमने दी। यह कहना सही है कि डूंगराराम के जीते जी उक्त खेत का बंटवाड़ा हो गया था। यह कहना सही है कि खेताराम पुत्र डूंगराराम ने उक्त आराजी को जरीये दानपत्र उक्त भूमि को दान कर दिया था। यह कहना सही है कि उक्त भूमि का दान हनुमानराम, लिखमाराम, दुर्गाराम, कृष्णकुमार के पक्ष में दान की गई। यह कहना सही है कि उक्त जमीन खेताराम की स्वअर्जित भूमि है। यह कहना सही है कि खेताराम पुत्र डूंगराराम द्वारा हनुमानराम, लिखमाराम, दुर्गाराम, कृष्णकुमार के पक्ष में दान की गई भूमि के बाद खेताराम के नाम शेष बची भूमि में से मैं हिस्सा मांग सकती हूं। यह कहना सही है कि खेताराम पुत्र डूंगराराम द्वारा दान करने के बाद शेष बची भूमि में से मेरा 1/11 हिस्सा मुझे स्वीकार है। यह कहना सही है कि खेताराम पुत्र डूंगराराम के भाई उदाराम के पुत्र भैराराम का विवाह मेरी ननद हेमी से किया हुआ है। यह कहना सही है कि खेताराम व उदाराम के आपस में बनती नहीं है। यह कहना गलत है कि खेताराम व उदाराम के आपस में नहीं बनने के कारण हमने हेमी के कहने से दावा किया हो। मेरे ससुर का नाम रावताराम है। यह कहना सही है कि मेरे ससुर रावताराम व मेरे पति खेताराम ने कहा कि आप उक्त भूमि का दावा करो तब मैंने उनके कहने से उक्त भूमि का दावा किया। यह कहना सही है कि उक्त दावा में

क्या कागज लगाये गये हैं इसका मुझे पता नहीं है। यह कहना गलत है कि उक्त दावे में क्या लिखा है उसका मुझे पता नहीं हो। यह कहना गलत है कि उक्त दावा मेरे वकील साहब ने पेश किया हो। अज खुद कहा कि मैंने खुद ने पेश किया है। यह कहना सही है कि उक्त दावे में केवियट लगी हुई है इसका मुझे पता है। यह कहना गलत है कि उक्त शपथ पत्र जो मैंने पेश किया है वह टाइप किया हुआ पेश किया हो। यह कहना सही है कि उक्त शपथ पत्र वकील साहब ने खुद लिखकर कोर्ट में पेश किया है। यह कहना गलत है कि उक्त शपथ पत्र पेश करते समय वकील साहब ने हमें बुलाया नहीं हो। उक्त खेत के खसरा संख्या कितने हैं मुझे पता नहीं है। उक्त खेतों में खेजड़ी कितनी है इसका मुझे पता नहीं है। उक्त खेतों में कितने बाड़े बनाए हुए हैं इसका मुझे पता नहीं है। मैं 40 वर्ष की हूं। डूंगराराम कब फौत हुए मुझे पता नहीं है। यह कहना सही है कि मैं कभी भी पटवारी के पास जमाबंदी आदि लेने नहीं जाती हूं। यह कहना गलत है कि उक्त दावे में लगे सभी कागज भैराराम ने लाकर दिये हों। यह कहना सही है कि मैं अनपढ हूं और इस दावे में क्या लिखा है इसका मुझे पता नहीं है। मेरे वकील साहब का नाम सुख जी है। यह कहना गलत है कि जब मैंने 2020 में दावा किया तब मेरे वकील साहब सुख जी हो। वर्ष 2020 में जब मैंने दावा किया तब मेरे वकील हरिश जी थे। यह कहना गलत है कि मैं मेरे ससुराल में उक्त जमीन काश्त करती हूं। यह कहना गलत है कि मैं आलपुरा में भैरा के घर जाती हूं। यह कहना गलत है कि कोर्ट में पेशी पर भैराराम आता हो। मेरी शादी हुए 15 वर्ष हो गये। मेरे दो बच्चे हैं। एक बच्ची है। मेरा बड़ा बेटा 20 वर्ष का है।

8. प्रकरण में पी0डब्ल्यू-02 हेमी पत्नी भैराराम ने दौराने प्रतिपरीक्षण अभिकथन किए कि मेरा विवाह हुए 3-4 साल हुए है। मेथों मेरे ननद लगती है। मेरे ससुर का उदाराम नाम है। यह कहना सही है कि उदाराम व खेताराम दोनो भाई है। यह कहना गलत है कि उदाराम व खेताराम के परिवार में आपस में नही बनती हो। यह कहना सही है कि भैराराम उदाराम का पुत्र है। मेथोदेवी के ससुर का नाम रावताराम है। रावताराम मेरे पिताजी लगते हैं। मेथोदेवी के पति का नाम पीराराम है। पीराराम व रावताराम साथ में ही रहते हैं। मेथोदेवी रावताराम से अलग रहती है। मेरी सगी ननद नहीं है। हमारी ढाणी व हमारे काके ससुर की ढाणी अलग-अलग है। मेरे एक जेठ है। जेठ और हम अलग-अलग रहते हैं। हमारे व मेरे काके ससुर के कणे का विवाद चलता हो तो मुझे पता नहीं है। आज में कोर्ट में अकेली ही आई हूं। यह कहना गलत है कि भैराराम जी आज मेरे साथ आए हों। इससे पूर्व मैं इस कोर्ट में आई हुई हूं। इस शपथ पत्र के संबंध में मुझे जानकारी नहीं है। शपथ पत्र में क्या लिखा हुआ है मुझे जानकारी नहीं है। उक्त शपथ पत्र वकील साहब हरिश जी के हाथ से लिखा हुआ है। मुझे कहा कि अंगुठा कर दो मैंने अंगुठे कर दिये। यह दावा कब पेश किया मुझे पता नहीं है। इस दावे में क्या कागज पेश किये गये हैं मुझे पता नहीं। यह शपथ पत्र कितनी तारीख को लिखा गया है इसका मुझे कोई पता नहीं है। मैं आज कोर्ट में बयान देने के लिये आई हूं। इस शपथ पत्र में खसरे नम्बर कितने लिखे हुए हैं इसका मुझे पता नहीं है। उक्त पत्रावली के अंदर और कौन कौनसे गवाह हैं मुझे पता नहीं।
9. प्रकरण में पी0डब्ल्यू-03 खेताराम पुत्र रावताराम ने दौराने प्रतिपरीक्षण अभिकथन किए कि मैं पांचवीं पढा हुआ हूं। मेरा गांव ढीमड़ी है। वादीनी मेथोदेवी मेरी भाभी लगती है। हेमीदेवी पत्नी भैराराम मेरी बहन लगती है। आज हम दोनों बहन-भाई गवाह देने

कोर्ट में आए हैं। यह कहना सही है कि मैं वादी हूँ। ठीमड़ी और आलपुरा की एक किलोमीटर की दूरी है। हमारे खेत के खसरा संख्या 24 व 25 है। पीराराम मेरे भाई लगता है। पीराराम और मैं अलग-अलग रहते हैं। मुझे पता नहीं है कि प्रतिवादी क्या होता है। प्रतिवादी 11 पक्षकार बनाए हुए हैं। उक्त शपथ पत्र में मैंने मेथोदेवी के रूबरू शपथ ली। यह कहना सही है कि यह शपथ पत्र हाथ से लिखा हुआ है। यह कहना सही है कि उक्त शपथ पत्र वकील साहब हरिश जी के हाथ से लिखा हुआ है। उक्त वादपत्र 7-8 महीने पूर्व पेश किया गया है। प्रतिवादी खेताराम पुत्र डुंगराराम चार भाई है। खेताराम, उदाराम, वेहनाराम, जुंजाराम चारों भाई है। इन चारों भाईयों के आपस में बनती है। उक्त दावा पेश करने के लिये मैं मेथो के साथ में आया था। उक्त वादपत्र में धारा क्या लिखी हुई है इसका मुझे पता नहीं है। वादपत्र के तीन पृष्ठ हैं। उक्त वादपत्र के अंदर गवाह हम सभी एक ही परिवार से हैं। यह कहना सही है कि वादीनी मेथो एवं प्रतिवादी खेताराम के बीच में पहले तो बनती थी लेकिन जमीन बेचने के बाद में नहीं बनती है। प्रतिवादी खेताराम ने उक्त जमीन अपने पुत्रों के नाम करवा दी। प्रतिवादी खेताराम ने बेचान अपने पुत्र हडमानराम, दुर्गाराम, लिखमाराम, कृष्ण के नाम जमीन करवा दी। उक्त जमीन प्रतिवादी खेताराम ने अपने पुत्रों के नाम हडमानराम, दुर्गाराम लिखमाराम कृष्ण के नाम की। उक्त भूमि में प्रतिवादी खेताराम के पुत्रों की अलग-अलग ढाणियां बनी हुई है। हमारे भी इस जमीन में जाने का काम पड़ता है। यह कहना गलत है कि हमारे और हडमानराम, दुर्गाराम लिखमाराम कृष्ण के नहीं बनती हो। उक्त शपथ पत्र में पद क्या है मुझे पता नहीं है। उक्त शपथ पत्र में सत्यापन कौनसे पृष्ठ पर लिखा हुआ है मुझे पता नहीं है। सत्यापन में पद क्या है मुझे जानकारी नहीं है। उक्त शपथ पत्र में मैंने धारा लिखवाई है उसका मुझे पता नहीं है। उक्त शपथ पत्र में जो धारा लिखी हुई है वो वकील साहब ने लिखी है। अज खुद कहा कि मेरे कहने से लिखी है। यह कहना सही है कि उक्त खसरा संख्या 46.2 कितने बीघे का है, 52 नम्बर खसरा कितने बीघा का है, 53 नम्बर खसरा कितने बीघा का है मुझे पता नहीं है। प्रतिवादी खेताराम ने अपने पुत्रों को 35 बीघा जमीन दी। प्रतिवादी खेताराम द्वारा अपने पुत्रों के नाम जमीन करवाने के महीने भर बाद उक्त दावा लगाया गया। डुंगराराम के पिताजी का नाम क्या है मुझे पता नहीं है। डुंगराराम एक ही था। मेथोदेवी अपने पति के साथ ही रहती है। यह कहना गलत है कि आज मैं मेथो के कहने से झूठे बयान देने कोर्ट में आया हूँ।

10. प्रकरण में वादीगण साक्ष्य के पश्चात् पत्रावली प्रतिवादी साक्ष्य में नियत की गई। प्रतिवादीगण द्वारा साक्ष्य स्वरूप निम्न प्रकार प्रदर्श अंकित करवाए गए-

दस्तावेज	संवत्/विवरण	प्रदर्श
दानपत्र	दिनांक 09.12.2020 को उपपंजीयक गुड़ामालानी में पंजीबद्ध	प्रदर्श डी-01
जमाबंदी	खाता संख्या 63 संवत् 2076-2079	प्रदर्श डी-02

11. प्रकरण में प्रतिवादीगण साक्ष्य स्वरूप निम्न गवाह प्रस्तुत किए-

नाम	जाति	निवासी	गवाह
खेताराम पुत्र डुंगराराम	जाट	आलपुरा	डी0डब्ल्यू-1
हनुमानराम पुत्र खेताराम	जाट	आलपुरा	डी0डब्ल्यू-2
नगराज पुत्र राउराम	जाट	आलपुरा	डी0डब्ल्यू-3

बांकाराम पुत्र मदरूपाराम	जाट	आलपुरा	डी0डब्ल्यू-4
--------------------------	-----	--------	--------------

12. प्रकरण में डी0डब्ल्यू-1 खेताराम पुत्र डूंगाराराम डी0डब्ल्यू-2 हनुमानराम पुत्र खेताराम, डी0डब्ल्यू-3 नगराज पुत्र राउराम, डी0डब्ल्यू-4 बांकाराम पुत्र मदरूपाराम द्वारा अपने साक्ष्य शपथ पत्र में समान रूप से निम्न प्रकार कथन किये-

- कि प्रतिवादी संख्या 01 का खातेदारी खेत खसरा संख्या 46/2 रकबा 14-15 बीघा, 52 रकबा 0-02 बीघा, 53/6 रकबा 20-08 बीघा मौजा आलपुरा तहसील गुड़ामालानी में आया हुआ है। प्रकरण में वादिनी द्वारा जो वंशवृक्ष बनाया गया वह गलत है एवं वादिनी को प्रतिवादी संख्या 01 की पुत्री गलत बताया गया है।
- कि वादग्रस्त आराजी में प्रतिवादी संख्या 01 का कब्जा काश्त है। दिनांक 09.12.2020 को प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा अपने ही पुत्रों प्रतिवादी संख्या 04 से 07 को उक्त वादग्रस्त आराजी में से 4/5 हिस्सा जरिये दानपत्र बेचान की गई। इस प्रकार प्रतिवादी संख्या 04 से 07 के 4/5 हिस्से के नाम की घोषणा की जाकर सहखातेदार घोषित किया जावे।
- कि वादिनी तरबिती पक्षकार है एवं प्रतिवादी खेताराम की जायन्दा पुत्री नहीं है। वर्तमान समय में वादिनी अजनबी व्यक्ति बनकर घोषणा का वाद पेश किया है। अजनबी पक्षकार को दावा पेश करने का अधिकारी नहीं होने के कारण उक्त प्रकरण को मयखर्चा खारिज फरमाया जावे।
- कि उक्त वादग्रस्त आराजी का प्रतिवादी संख्या 01 ही स्वामी है इसलिए प्रतिवादी संख्या 01 मालिक की हैसियत उक्त आराजी को हस्तान्तरण करने का संपूर्ण अधिकार है। जिसके विरुद्ध वादिनी को स्थाई निषेधाज्ञा लाने का कोई अधिकार नहीं है।
- इसके समर्थन में वादी द्वारा पैरा-10 में अंकित दस्तावेज प्रदर्श करवाएं हैं।

13. प्रकरण में डी0डब्ल्यू-01 खेताराम पुत्र डूंगाराराम ने दौराने प्रतिपरीक्षण अभिकथन किए कि मेरा नाम खेताराम है। यह कहना गलत है कि पहले मैं सरकारी नौकरी में था। यह कहना सही है कि मैं खेती करता हूं। मैं आज कोर्ट में गवाह बयान देने आया हूं। मैंने जमीन का खूनदान करने के लिए आज मैं कोर्ट में बयान देने आया हूं। यह कहना गलत है कि मेरे दस लड़के-लड़किया हो। अज खुद कहा कि मेरे 9 लड़के-लड़किया है। जिसमें 4 लड़के और पांच लड़किया है। यह जमीन मेरे पैतृक जमीन है खरीदी हुई नहीं है। बाप दादाओं की जमीन है। मुझे मेरे जमीन के खसरा संख्या याद है। खसरा संख्या 46 रकबा 14 बीघा 15 बिस्वा है। एक खसरा संख्या मुझे याद नहीं है जिसमें ढाणी कटी हुई है ढाणी सेटलमेंट के समय से कटी हुई है। यह कहना सही है कि सेटलमेंट के समय मेरे पिताजी जीवित थे। अज खुद कहा कि अभी जीवित नहीं है। मेरे 10 संतान में से एक कोई संतान खत्म हो गई है तो मुझे जानकारी नहीं है। वादपत्र में उल्लेखित सजरा बताने पर कहा कि मैं पढ़ नहीं सकता हूं केवल मैं मेरे हस्ताक्षर करना जानता हूं। पूछने पर पैतृक संपत्ति का दान होता है क्या तब कहा कि मेरे द्वारा किया हुआ दानपत्र विधिवत है। डूंगाराराम हरजी के पुत्र थे डूंगरा के चार पुत्र थे उसमें से मैं एक जीवित हूं। डूंगाराराम आज से करीब 20-25 साल पहले फौत हुए थे। डूंगरा के सबसे बड़े पुत्र का नाम उदा उससे छोटा वेहना उससे छोटा जूझा, उससे छोटा मैं खुद खेताराम हूं। मेरे बहिने भी है उनका

नाम आसू, तीजो, कसूम्बी है। मेरे और मेरी बहिनो के आवजाव है। मेरी पांचों पुत्रियों के आवजाव है। मैंने मेथो की कभी पिटाई नहीं की, मैं मंथों को जानता भी नहीं हूँ। मेथो की कब शादी हुई मुझे जानकारी नहीं है। मेरी पत्नी का नाम झीमों देवी है। यह कहना गलत है कि मेरी पत्नी के साथ मेथों रहती है। अज खुद कहा कि मेथों को मैं नहीं जानता हूँ। वादिनी मेथों का दस्तावेज प्रदर्श-6 जनआधार पर लगे फोटो की पहचान बताने पर कहा कि मुझे जनआधार पर लगा फोटो दिखाई नहीं दे रहा है। यह दावा सन 2020 में लगा था अभी पांचवी साल चल रही है। दावे में जितनी पेशिया हुई सभी पेशियों में मैं आया हूँ। सामने वाला पक्ष मेथो दावे में पेशी पर आई तो मैंने नहीं देखा। वादपत्र में वर्णित भूमि डूंगरा की है डूंगरा के फौत होने के बाद हमारे पास आई। यह कहना गलत है कि विवादित आराजी के 1/11 हिस्से पर वादिनी का कब्जा हो। यह कहना गलत है कि मैं बयान किसी के कहने से दे रहा हूँ फिर पुछने पर वकील साहब के कहे अनुसार बयान दे रहे हो तब कहा कि मैं बयान मेरे खुद के अनुसार ही दे रहा हूँ। विवादित भूमि पर मेरा कब्जा कही पर नहीं है मेरे पुत्रों का कब्जा है। मैंने शपथ पत्र 17.07.2025 को पेश किया। शपथ पत्र में कितनी लाईने और कितने पद और कितने शब्द है मुझे पता नहीं। मैंने तो अगुठा नहीं करके हस्ताक्षर किए।

14. प्रकरण में डी0डब्ल्यू-02 हनुमानराम पुत्र खेताराम ने दौराने प्रतिपरीक्षण अभिकथन किए कि यह कहना गलत है कि मेरा नाम मानाराम है। मुझे आम बोलचाल में भी मुझे मानाराम नहीं कहते है हनुमानराम कहते है। मैं पहली दुसरी तक पढा लिखा हूँ। मेरे दादा का नाम डूंगराराम था। डूंगराराम के पिताजी का नाम हरजीराम था। डूंगराराम के कोई भाई नहीं था। डूंगराराम के कितनी संतान थी मुझे पता नहीं है। डूंगराराम के कितनी संतान है तब कहा कि 35 बीघा है। खेताराम के कितने धर्मज पुत्र है और कितने अधर्मज पुत्र है तब कहा 4 है। यह कहना गलत है कि खेताराम के छः लड़किया है अज खुद कहा कि 5 लड़किया है। यह कहना गलत है कि मैं गुजरात में कमाने जाता हूँ यहां नहीं रहता हूँ। यह कहना गलत है कि मैं लड़ाई झगड़े करता रहता हूँ। मैंने मेरी बहिनों को औढामनी की है। शपथ पत्र पेश किया उस दिन 17.07.2025 थी। शपथ पत्र में क्या लिखा हुआ है मुझे पता है सुनाने के लिए कहने पर कहा कि मुझे इतना याद नहीं है। यह कहना गलत है कि शपथ पत्र वकील साहब ने खुद टाईप किया हो। अज खुद कहा कि शपथ मैंने बोला और वकील साहब ने लिखा था। शपथ पत्र में कितने पद,शब्द और कितने पेज है मुझे पता नहीं।

15. प्रकरण में डी0डब्ल्यू-03 नगराज पुत्र राउराम ने दौराने प्रतिपरीक्षण अभिकथन किए कि मैं बीए तक पढा हुआ हूँ तथा खेतीबाड़ी करता हूँ। यह कहना सही है कि हम एक ही गांव के है और पड़ोसी है। हरजीराम डूंगराराम के पिताजी थे। हरजीराम के कितनी संतान थी आज मुझे ध्यान नहीं है। डूंगराराम के चार पुत्र है पुत्रियों का मुझे ध्यान नहीं है। हरजीराम के पड़पौते व पड़पौतिया कितनी है मुझे याद नहीं है। यह दावा खेताराम ने किया यह कहना सही है कि यह दावा मेथो ने किया तब कहा कि मैं मेथों को जानता नहीं हूँ। यह कहना गलत है कि मैं मंथों को जानता हू व न ही पहचानता हूँ। शपथ में लिखे गए खसरा संख्या मुझे याद है। खसरा संख्या 53/6, 46/2 एक खसरा और है वो याद नहीं है। तीनो खसरो का रकबा 35 बीघा 5 बिस्वा है। यह जमीन पैतृक बपौती जमीन है। यह कहना गलत है कि मैं पैसे लेकर गवाही देने आया हूँ।

16. प्रकरण में डी0डब्ल्यू-04 बांकाराम पुत्र मदरूपाराम ने दौराने प्रतिपरीक्षण अभिकथन किए कि यह कहना गलत है कि मैं बीए पास हूं। मैं अनपढ़ हूं। हरजीराम के एक ही पुत्र डूंगराराम था। डूंगराराम के चार लड़के थे। सबसे बड़े उदा, वेहना, जूँझा, खेता थे। दावा करने वाली हरजी के पड़पौती हो तो मैं नहीं जानता हूं। डूंगराराम की पौती हो तो भी मुझे पता नहीं। सबसे बड़ी मेथों है तो मैं जानता नहीं हूं। खेताराम के पांच लड़किया एवं चार लड़के है। सबका पुछने पर तीन लड़को का अलग रहने का कहा। जमीन किसकी मुझे पता नहीं। यह जमीन पैतृक है। यह कहना गलत है कि दान हुआ वह गलत हुआ है। शपथ पत्र वकील साहब ने नहीं लिखा कम्प्युटर वाले ने लिखा। शपथ पत्र में कितनी लाईने है मैं अनपढ़ हूं। शपथ पत्र कौनसी तारीख को दिया पुछने पर बताया कि तारीख मुझे पता नहीं एक महिना हुआ है। शपथ पत्र पर अगुष्ट निशान मुझे जहां जची वहां किए। अज खुद कहा मुझे शपथपत्र पढकर सुनाया गया वहा किए। शपथ पत्र पर मैंने तीन जगह अंगुष्ट निशान किए। वादपत्र कितने खसरो का है पुछने पर बताया कि मैं अनपढ़ हूं मुझे याद नहीं है। यह कहना गलत है कि दावा झूठा पेश किया हो और गवाह झूठी पेश की हो।
17. पत्रावली पर विद्वान अधिवक्ता वादीगण की बहस सुनी गई। दौराने बहस विद्वान अधिवक्ता वादी द्वारा वाद पत्र में अंकित बिन्दुओं को मात्र दौहराते हुए निवेदन किया कि वादी मुतनाजा आराजी पर प्रतिवादी संख्या 01 के द्वारा दानपत्र द्वारा किए गए अंतरण को वादी के हिस्से की सीमा तक निष्प्रभावी व बेअसर घोषित कर वादी को प्रतिवादी के साथ जन्म से ही सहकृषक होने से वादी का 1/11 हिस्सा खातेदारी में घोषित किया जावे।
18. दौराने बहस विद्वान अधिवक्ता प्रतिवादी ने लिखित बहस प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया कि
- वादी द्वारा अपने शपथ पत्र में स्वीकार किया है कि खेताराम पुत्र डूंगराराम के द्वारा अपने पुत्रों को जरिये दानपत्र दान की गई भूमि के बाद शेष बची हुई भूमि में 1/11 हिस्सा स्वीकार है। इस प्रकार वादी खुद शपथ लेकर अपना हिस्सा उक्तानुसार स्वीकार कर रही है।
 - वादी द्वारा अपने शपथ पत्र में स्वीकार किया है कि खेताराम के भाई उदाराम के पुत्र भेराराम का विवाह ननद हेमी से किया हुआ है। इस प्रकार ससुर रावताराम व मेरे पति पीराराम व जेठ के कहने पर मेरे द्वारा यह दावा किया गया है। साथ ही वादी द्वारा अपने शपथ पत्र में स्वीकार किया है कि मुताबिक प्रतिदावा हस्तगत दावा डिक्री किया जावे।
 - प्रकरण में वादी द्वारा प्रस्तुत गवाह वादी के रिश्तेदार है। इस प्रकार वादी द्वारा कोई स्वतंत्र गवाह प्रस्तुत नहीं किया है। इस प्रकार दावा वादी सारहीन होने के कारण काबिल ए खारिज है।
19. मैंने विद्वान अधिवक्ता वादी की बहस पर मनन किया गया एवं पत्रावली पर संलग्न दस्तावेजात् का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया गया। प्रकरण में तनकी वार विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है। इस कारण प्रकरण में प्रथम तनकी का विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है। प्रकरण में प्रथम तनकी निम्न प्रकार हैं:-

1. वादीया हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 के तहत विधिक वारिस होने के आधार पर मुतनाजा आराजी पर मुताबिक हिस्सा खातेदारी अधिकारों की घोषणा प्राप्त करने के अधिकारी है।

.....वादीया

20. प्रकरण में प्रथम तनकी वादी की खातेदारी आराजी पर खातेदारी अधिकारों की घोषणा से संबंधित है। प्रकरण में वादी मुतनाजा आराजी मौजा आलपुरा में वादी के पिता प्रतिवादी संख्या 01 के द्वारा अपने हिस्से से ज्यादा दानपत्र द्वारा किए गए अंतरण को वादी के हिस्से की सीमा तक निष्प्रभावी व बेअसर घोषित कर वादी को प्रतिवादी के साथ जन्म से ही सहकृषक होने से वादी का 1/11 हिस्सा खातेदारी में घोषित करवाने से संबंधित है।

21. प्रकरण का अवलोकन करने पर प्रतीत होता है कि अनुतोष संख्या 01 सारतः हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1955 की धारा-06 से संबंधित है। अब प्रकरण में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-6 का प्रकरण में अवलोकन किया जाना आवश्यक है जिसके प्रासंगिक विवरण का उद्धरण इस प्रकार है:-

6. Devolution of interest in coparcenary property.—

(1) On and from the commencement of the Hindu Succession (Amendment) Act, 2005 (39 of 2005), in a Joint Hindu family governed by the Mitakshara law, the daughter of a coparcener shall,—

(a) by birth become a coparcener in her own right the same manner as the son;

(b) have the same rights in the coparcenary property as she would have had if she had been a son;

(c) be subject to the same liabilities in respect of the said coparcenary property as that of a son, and any reference to a Hindu Mitakshara coparcener shall be deemed to include a reference to a daughter of a coparcener:

Provided that nothing contained in this sub-section shall affect or invalidate any disposition or alienation including any partition or testamentary disposition of property which had taken place before the 20th day of December, 2004.

22. उक्त उद्धरण अनुसार हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-6 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अविभाजित सहदायिकी सम्पत्ति में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-6 के अनुसार पुत्र व पुत्री को समान अधिकार व दायित्व प्राप्त होकर सहदायिकी का दर्जा प्राप्त करने के प्रावधान है। साथ ही अविभाजित सहदायिकी सम्पत्ति में कोई सहदायक कभी भी अपना हिस्सा घोषित करवाकर पृथक हिस्सा कायम करवाने हेतु घोषणा एवं विभाजन का दावा लाकर घोषणा एवं विभाजन करवा सकता है। उक्त विधित प्रावधानों के परिप्रेक्ष्य में प्रकरण में तथ्य निर्विवादित है कि वादी व प्रतिवादी हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 के तहत हिन्दू होने के कारण प्रकरण में सम्पत्ति पर हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 के प्रावधान लागू होते हैं। साथ ही वादी द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज के अवलोकन से स्पष्ट है कि मुतनाजा आराजी प्रतिवादी संख्या 01 की स्वअर्जित आराजी नहीं होकर पैतृक आराजी है। इस

प्रकार स्पष्ट है कि उक्त आराजी हिन्दू अविभाजित परिवार की अविभाजित पैतृक व सहदायिकी सम्पत्ति है। साथ ही प्रकरण में यह तथ्य भी निर्विवादित है कि वादी व प्रतिवादी संख्या 01, 04-07 प्रतिवादी संख्या 01 की संतान हैं। इस आधार पर वादीगण व प्रतिवादी संख्या 01, 04-07 प्रतिवादी संख्या 01 उक्त हिन्दू अविभाजित परिवार की अविभाजित पैतृक व सहदायिकी सम्पत्ति में सहदायक हैं। अतः वादीगण उक्त अविभाजित सहदायिकी सम्पत्ति में सहदायक होने के कारण अपना हिस्सा घोषित करवाकर पृथक हिस्सा कायम करवाने हेतु घोषणा एवं विभाजन का दावा लाकर घोषणा एवं विभाजन करवाने का अधिकारी है।

23. प्रकरण में अब हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-08 के अनुसार विवेचन किया जाना उचित है। यहा उल्लेखनीय है विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि किसी हिन्दू के निर्वसीयती फौत होने पर हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-08 के तहत संपत्ति में अधिकार न्यागत होते हैं। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-08 के अनुसार हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की अनुसूची में सर्वप्रथम प्रथम श्रेणी के वारिसों में किसी हिन्दू के निर्वसीयती फौत होने पर हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-08 के तहत संपत्ति न्यागत होती है। अगर हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-08 के अनुसार हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की अनुसूची में प्रथम श्रेणी के कोई भी वारिस नहीं होने की स्थिति में किसी हिन्दू के निर्वसीयती फौत होने पर हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की अनुसूची में द्वितीय श्रेणी के वारिसों में किसी हिन्दू के निर्वसीयती फौत होने पर हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-08 के तहत संपत्ति न्यागत होती है। प्रकरण में यह तथ्य भी निर्विवादित है कि वादी व प्रतिवादी संख्या 01, 04-07 प्रतिवादी संख्या 01 की संतान हैं।

24. इस प्रकार प्रकरण में खेताराम वल्द डूंगराराम की विधिक वारिसान होने के नाते वादी प्रथम श्रेणी के वारिस मौजूद है। उल्लेखनीय है कि किसी हिन्दू के निर्वसीयती फौत होने पर हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-08 के अनुसार हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की अनुसूची में प्रथम श्रेणी के समस्त वारिसों में बराबर हिस्से में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-08 के तहत विरासत में मृतक निर्वसीयती हिन्दू की संपत्ति न्यागत होती है। इस प्रकार वादी का भी खेताराम वल्द डूंगराराम की संपत्ति में अन्य प्रतिवादीगण के समान हक 1/11 हिस्सा निहित है। इस प्रकार तनकी संख्या 01 को वादी साबित करने में सफल रहे है। इस प्रकार तनकी संख्या 01 वादी के पक्ष में स्वीकार की जाती है।

25. प्रकरण में अब तनकी संख्या 03 पर विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है। प्रकरण में तनकी संख्या 03 निम्न प्रकार है:-

3. आया प्रतिवादी संख्या 04 लगायत 07 माफिक दानपत्र दिनांक 09. 12.2020 मुतनाजा आराजी में 4/5 हिस्से की खातेदारी अधिकारों की घोषणा प्राप्त करने के अधिकारी है।

.....प्रतिवादी

26. प्रकरण तनकी संख्या 03 पंजीबद्ध दान पत्र को वैध मानते हुए प्रतिवादी संख्या 04-07 के पक्ष में खातेदारी अधिकारों की घोषणा करने संबंधित है। प्रकरण में तनकी संख्या 03 को साबित करने का भार प्रतिवादी के उपर है। प्रकरण में इस तनकी पर हिन्दू

विधि के तहत सहदायिकी संपत्ति में दानपत्र के द्वारा संपत्ति के अंतरण की अवधारणा को समझना आवश्यक है। इस संबंध में सर्वप्रथम मुतनाजा आराजी के सहदायिकी संपत्ति होने के बारे में समझना आवश्यक है।

27. प्रकरण में सहदायिकी संपत्ति से संबंधित संकल्पनाओं व कानून के निम्न बिंदुओं का विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है:-

1. हिन्दू संयुक्त परिवार एवं संपत्ति की संकल्पना/अवधारणा।
2. पैतृक संपत्ति की संकल्पना/अवधारणा।
3. सहदायिकी एवं सहदायिकी संपत्ति की संकल्पना/अवधारणा।
4. सहदायिकी संपत्ति में सहदायक के अधिकार की संकल्पना/अवधारणा।
5. हिन्दू संयुक्त परिवार के कर्ता/मुखिया की संकल्पना/अवधारणा।
6. हिन्दू संयुक्त परिवार के कर्ता/मुखिया के प्राधिकार की संकल्पना/अवधारणा।
7. हिन्दू संयुक्त परिवार के कर्ता/मुखिया की सहदायिकी संपत्ति के अंतरण की संकल्पना/अवधारणा।
8. सहदायिकी संपत्ति के अंतरण हेतु आवश्यक परिस्थितियों की संकल्पना/अवधारणा।
9. हिन्दू संयुक्त परिवार के कर्ता/मुखिया की सहदायिकी संपत्ति के अंतरण किये जाने पर क्रेता के कर्तव्य की संकल्पना/अवधारणा।
10. हिन्दू संयुक्त परिवार के कर्ता/मुखिया की सहदायिकी संपत्ति के अंतरण के विरुद्ध सहदायक को उपलब्ध विकल्प/उपचार की संकल्पना/अवधारणा।

28. प्रकरण में सर्वप्रथम हिन्दू विधि के तहत सर्वप्रथम हिन्दू संयुक्त परिवार एवं हिन्दू संयुक्त परिवार द्वारा धारित संपत्ति की संकल्पना/अवधारणा के संबंध में कानून/विधि की स्थिति को समझना अपरिहार्य है। हिन्दू संयुक्त परिवार एवं हिन्दू संयुक्त परिवार द्वारा धारित संपत्ति की संकल्पना/अवधारणा के निम्न आवश्यक अवयव हैं:-

1. हिन्दू विधि में संयुक्त हिन्दू परिवार में सभी परिवार के सदस्य का एक पुरुष पूर्वज होना आवश्यक है।
2. हिन्दू विधि में संयुक्त हिन्दू परिवार में सभी पुरुष, उनकी पत्नियां, माताएं एवं अविवाहित पुत्री शामिल होती हैं।
3. हिन्दू विधि में संयुक्त हिन्दू परिवार में शामिल अविवाहित पुत्री का विवाह होते ही वह पति के संयुक्त हिन्दू परिवार का सदस्य बनकर शामिल हो जाती है तथा पिता के संयुक्त हिन्दू परिवार से अलग हो जाती है।
4. हिन्दू विधि में बिना संयुक्त हिन्दू परिवार की संपत्ति के भी संयुक्त हिन्दू परिवार अस्तित्व में आ सकता है।
5. हिन्दू विधि में संयुक्त हिन्दू परिवार के सदस्य एक दुसरे से रिश्ते के आधार पर एकता में बंधे रहते हैं।
6. हिन्दू विधि में संयुक्त हिन्दू परिवार के सदस्य एक दुसरे से रिश्ते के साथ-साथ भोजन एवं पूजा में भी एकता में बंधे रहते हैं।

7. हिन्दू विधि में संयुक्त हिन्दू परिवार विधि द्वारा सृजित ईकाई है। किन्हीं सदस्यों के द्वारा आपस में संयुक्त हिन्दू परिवार का सृजन नहीं किया जा सकता है।
 8. हिन्दू विधि में संयुक्त हिन्दू परिवार में गोद द्वारा नये सदस्य जोड़े जा सकते हैं।
 9. हिन्दू विधि में संयुक्त हिन्दू परिवार में किसी पुरुष सदस्य के नहीं होने की स्थिति में परिवार के अंत को रोकने हेतु गोद द्वारा नये सदस्य जोड़कर परिवार को आगे बढ़ाया जा सकता है।
 10. हिन्दू विधि में संयुक्त हिन्दू परिवार की संपत्ति पर एक का कब्जा सभी का कब्जा माना जाता है। इस प्रकार हिन्दू संयुक्त परिवार में संपत्ति पर कब्जे के आधार पर एकता रहती है।
 11. हिन्दू विधि में संयुक्त हिन्दू परिवार की संपत्ति में से कोई सदस्य कभी भी विभाजन करवाकर पृथक हो सकता है। इस प्रकार सदस्य के पृथक होने पर वह संपत्ति संयुक्त हिन्दू परिवार की नहीं रहती है।
 12. एक वृहत हिन्दू संयुक्त परिवार ईकाई में अनेक छोटी-छोटी हिन्दू संयुक्त परिवार की लघुतर ईकाई समाहित हो सकती है। जिनका पृथक अस्तित्व नहीं होता है परंतु छोटी-छोटी हिन्दू संयुक्त परिवार की लघुतर ईकाई अपना प्रबंधन पृथक करती हैं।
29. प्रकरण में हिन्दू विधि के तहत हिन्दू संयुक्त परिवार एवं हिन्दू संयुक्त परिवार संपत्ति की संकल्पना/अवधारणा के संबंध में कानून/विधि की स्थिति के पश्चात हस्तगत प्रकरण में वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 के हिन्दू संयुक्त परिवार के सदस्य होने के बारे में विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है। प्रकरण में वादी द्वारा सजरा प्रस्तुत करते हुए अभिकथन किया है कि वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 के हिन्दू होने के कारण सभी हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 से शासित होते हैं। वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 के पूर्वज डूंगराराम थे। डूंगराराम का एकमात्र वारिश खेताराम प्रतिवादी संख्या 01 है। इस प्रकार वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 प्रतिवादी संख्या 01 के विधिक वारिसान होने के कारण पारिवारिक इकाई का निर्माण करते हैं। इस प्रकार खेताराम वल्द डूंगराराम का परिवार एक वृहत पारिवारिक इकाई है। प्रकरण में अन्य प्रतिवादी द्वारा वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 के हिन्दू संयुक्त परिवार के सदस्य होने के बारे में कोई विशेष व स्पष्ट खंडन नहीं किया है।
30. इस प्रकार वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 के हिन्दू संयुक्त परिवार के सदस्य होने के बारे में वादी द्वारा सजरा प्रस्तुत किये जाने व साक्ष्य प्रस्तुत करने तथा प्रतिवादी द्वारा स्पष्ट खंडन नहीं करने तथा गवाहों के प्रतिपरीक्षण में वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 के हिन्दू संयुक्त परिवार के सदस्य होने के बारे में कोई विरोधस्वरूप अभिकथन स्पष्ट नहीं होने के आधार पर वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 के हिन्दू संयुक्त परिवार के सदस्य माना जाना उचित प्रतीत होता है।

31. अब प्रकरण में सहदायिकी संपत्ति को समझने के लिए सर्वप्रथम पैतृक संपत्ति की संकल्पना/अवधारणा को समझना आवश्यक है। अतः प्रकरण में हिन्दू उत्तराधिकार के तहत पैतृक आराजी की संकल्पना/अवधारणा के संबंध में कानून/विधि की स्थिति को समझना अपरिहार्य है। हिन्दू विधि के तहत पैतृक संपत्ति की वृहत संकल्पना को समझने के पश्चात हिन्दू विधि के पैतृक संपत्ति के निम्न आवश्यक अवयव हैं:-

1. किसी हिन्दू को अपने तृतीय पीढी के पूर्वज पुरुष पिता के पिता के पिता (परदादा) की संपत्ति, अपने पिता व पिता के पिता (दादा) की मृत्यु पिता के पिता के पिता (परदादा) की मृत्यु से पहले होने की स्थिति में, विरासत में सीधे प्राप्त होने पर प्राप्त संपत्ति उस हिन्दू की पैतृक संपत्ति होती है। उपरोक्त प्रथम परिस्थिति में स्पष्ट किया गया है।
2. किसी हिन्दू को अपने द्वितीय पीढी के पूर्वज पुरुष पिता के पिता (दादा) की संपत्ति, अपने पिता की मृत्यु पिता के पिता (दादा) की मृत्यु से पहले होने की स्थिति में, विरासत में सीधे प्राप्त होने पर प्राप्त संपत्ति उस हिन्दू की पैतृक संपत्ति होती है। उपरोक्त द्वितीय परिस्थिति में स्पष्ट किया गया है।
3. किसी हिन्दू को अपने प्रथम पीढी के पूर्वज पुरुष पिता की संपत्ति विरासत में प्राप्त होने पर प्राप्त संपत्ति उस हिन्दू की पैतृक संपत्ति होती है। उपरोक्त तृतीय परिस्थिति में स्पष्ट किया गया है। इस स्थिति में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 के लागू होने के पश्चात धारा-8 के तहत विरासत के तहत प्राप्त संपत्ति को प्राप्तकर्ता हिन्दू की पैतृक संपत्ति नहीं मानकर प्राप्तकर्ता हिन्दू की पृथक संपत्ति माना जाता है। अगर इस स्थिति में विरासत हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 के लागू होने से पूर्व खुलती हैं उस स्थिति में ही विरासत के तहत प्राप्त संपत्ति को प्राप्तकर्ता हिन्दू की पैतृक संपत्ति माना जाता है।
4. किसी हिन्दू की प्राप्त पैतृक संपत्ति को उस हिन्दू द्वारा अपने पुत्र, अपने पुत्र के पुत्र (पौत्र), अपने पुत्र के पुत्र के पुत्र (प्रपौत्र) होने की स्थिति में आवश्यक रूप से धारण करना अनिवार्य है।
5. किसी हिन्दू की प्राप्त पैतृक संपत्ति में उस हिन्दू का पुत्र, पुत्र के पुत्र (पौत्र), पुत्र के पुत्र के पुत्र (प्रपौत्र) जन्म से ही अधिकार निहित रखता है।
6. हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम-2005 द्वारा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-06 में किये गये संशोधन के पश्चात पुत्रियों को भी पुत्रों के समान सहदायक माना गया है। इस आधार पर किसी हिन्दू की प्राप्त पैतृक संपत्ति में उस हिन्दू की पुत्री भी जन्म से ही अधिकार निहित रखती है।

32. हिन्दु विधि में सहदायिकी संपत्ति में पैतृक आराजी, हिन्दू संयुक्त परिवार के किसी सदस्य की स्वअर्जित संपत्ति, हिन्दू संयुक्त परिवार के किसी सदस्य की पृथक संपत्ति एवं पैतृक संपत्ति से उत्पन्न आय से हिन्दू संयुक्त परिवार के किसी सदस्य द्वारा क्रय की गई संपत्ति शामिल होती है। सहदायिकी संपत्ति की वृहत संकल्पना के निम्न अवयव होते हैं:-

1. सहदायिकी या हिन्दू संयुक्त परिवार की पैतृक आराजी अनिवार्य रूप से सहदायक संपत्ति में निहित रहती है।
2. हिन्दू संयुक्त परिवार के किसी सदस्य की स्वअर्जित संपत्ति उस सदस्य विशेष द्वारा हिन्दू संयुक्त परिवार या सहदायिकी संपत्ति के बंडल में स्वेच्छा से समर्पित किये जाने पर सदस्य विशेष की स्वअर्जित संपत्ति सहदायक संपत्ति में समाहित हो जाती है।
3. हिन्दू संयुक्त परिवार के किसी सदस्य को अन्य स्रोत यथा-वसीयत, दान व पैतृक आराजी के अतिरिक्त विरासत से प्राप्त संपत्ति उस सदस्य विशेष द्वारा हिन्दू संयुक्त परिवार या सहदायिकी संपत्ति के बंडल में स्वेच्छा से समर्पित किये जाने पर सदस्य विशेष की पृथक संपत्ति सहदायक संपत्ति में समाहित हो जाती है।
4. हिन्दू संयुक्त परिवार के किसी सदस्य द्वारा हिन्दू संयुक्त परिवार की संपत्ति से उत्पन्न आय से खरीद की गई संपत्ति आवश्यक रूप से सहदायिकी संपत्ति में समाहित होती है।
5. हिन्दू संयुक्त परिवार के किसी सदस्य द्वारा हिन्दू संयुक्त परिवार की संपत्ति को नुकसान पहुंचाते हुए किसी सदस्य द्वारा खरीद की गई संपत्ति अनिवार्य रूप से सहदायिकी संपत्ति में समाहित होती है।

33. प्रकरण में हिन्दू विधि के तहत हिन्दू संयुक्त परिवार एवं हिन्दू संयुक्त परिवार संपत्ति की संकल्पना/अवधारणा के संबंध में कानून/विधि की स्थिति के पश्चात हस्तगत प्रकरण में विवादित आराजी के वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 की पैतृक संपत्ति होने के बारे में विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है।

34. प्रकरण में विवादित आराजी का मूल खातेदार डूंगराराम था। डूंगराराम की फौत होने पर संपत्ति खेताराम वल्द डूंगराराम को प्राप्त हुई है। इस प्रकार उक्त संपत्ति के प्राप्तकर्ता खेताराम द्वारा उक्त संपत्ति प्रतिवादी संख्या 01 के प्रथम पीढी के पुरुष पूर्वज डूंगराराम से विरासत में प्राप्त हुई है। उक्त संपत्ति को वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 द्वारा हिन्दू संयुक्त परिवार की संपत्ति के रूप में धारित किया जा रहा है। इस प्रकार उक्त संपत्ति के प्राप्तकर्ता द्वारा उक्त संपत्ति प्रतिवादी संख्या 01 के प्रथम पीढी के पुरुष पूर्वज से विरासत में प्राप्त होने के कारण वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 की पैतृक संपत्ति मानना विधिसंगत है।

35. प्रकरण में वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 के हिन्दू संयुक्त परिवार के सदस्य मानने के पश्चात विवादित आराजी के सहदायिकी संपत्ति होने के बारे में विश्लेषण

किया जाना अपेक्षित है। इससे पहले प्रकरण में हिन्दू विधि के तहत सर्वप्रथम सहदायक एवं सहदायिकी संपत्ति की संकल्पना/अवधारणा के संबंध में कानून/विधि की स्थिति को समझना अपरिहार्य है। सहदायक एवं सहदायिकी संपत्ति की संकल्पना/अवधारणा के निम्न आवश्यक इस प्रकार हिन्दू संयुक्त परिवार एवं हिन्दू संयुक्त परिवार द्वारा धारित संपत्ति की संकल्पना/अवधारणा के निम्न आवश्यक अवयव है:-

1. हिन्दू विधि में सहदायिकी में सभी सदस्यों का एक पुरुष पूर्वज होना आवश्यक है।
2. हिन्दू विधि में सहदायिकी में पुरुष पूर्वज के तीन पीढियों के वंशज सभी पुरुष शामिल होते हैं।
3. हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम-2005 द्वारा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-06 में किये गये संशोधन के पश्चात पुत्रियों को भी पुत्रों के समान सहदायक माना गया है।
4. हिन्दू विधि में सहदायिकी संपत्ति में पुरुष पूर्वज के तीन पीढियों के वंशज सभी पुरुषों का जन्म से ही अधिकार निहित हो जाता है।
5. हिन्दू विधि में सहदायिकी संपत्ति में उस हिन्दू का पुत्र, पुत्र का पुत्र (पौत्र), पुत्र के पुत्र का पुत्र (प्रपौत्र) जन्म से ही अधिकार निहित रखता है।
6. हिन्दू विधि में सहदायिकी में कोई सहदायक बिना विभाजन करवाये अपने हिस्से का अंतरण नहीं कर सकता है।
7. हिन्दू विधि में सहदायिकी संपत्ति में प्रत्येक सहदायक का विभाजन तक अन्य सहदायकों के साथ समस्त सहदायिकी संपत्ति के प्रत्येक भाग पर समान स्वामित्व माना जाता है।
8. हिन्दू विधि में सहदायिकी संपत्ति में प्रत्येक सहदायक का विभाजन तक अन्य सहदायकों के साथ समस्त सहदायिकी संपत्ति के प्रत्येक भाग पर समान कब्जा माना जाता है।
9. हिन्दू विधि में सहदायिकी संपत्ति में कोई सहदायक बिना अन्य सहदायकों की सहमति के बिना कोई विधिक आवश्यकता के अपने हिस्से का अंतरण नहीं कर सकता है।
10. हिन्दू विधि में सहदायिकी संपत्ति में सहदायक की मृत्यु पर सभी सहदायकों का हिस्सा बढ जाता है। इसी प्रकार सहदायिकी संपत्ति में सहदायक के जन्म पर सभी सहदायकों का हिस्सा घट जाता है। इस प्रकार सहदायिकी संपत्ति में किसी भी सहदायक का हिस्सा निश्चित नहीं होकर सहदायिकी में सदस्यों के जुड़ने व हटने पर परिवर्तित होता रहता है।
11. हिन्दू विधि में सहदायिकी संपत्ति में किसी एक सहदायक द्वारा अपना अधिकार/हक त्यागने पर बाकी अन्य सहदायकों के पक्ष में समान अधिकार सृजन माना जाता है।
12. हिन्दू विधि में सहदायिकी विधि द्वारा सृजित ईकाई है। किन्ही सदस्यों के द्वारा आपस में सहदायिकी का सृजन नहीं किया जा सकता है।

13. हिन्दू विधि में सहदायिकी में गोद द्वारा नये सदस्य जोड़े जा सकते हैं।

14. हिन्दू विधि में सहदायिकी में किसी पुरुष सदस्य के नहीं होने की स्थिति में सहदायिकी के अंत को रोकने हेतु गोद द्वारा नये सदस्य जोड़कर सहदायिकी को आगे बढ़ाया जा सकता है।

36. अतः वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 के एक ही हिन्दू संयुक्त परिवार के सदस्य होने के आधार पर वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 उक्त सहदायिकी में सहदायक होना स्पष्ट है। इस प्रकार मुतनाजा आराजी वादी व प्रतिवादीगण संख्या 01, 04-07 की सहदायिकी संपत्ति है। अब प्रकरण में सहदायिकी संपत्ति में परिवार के मुखिया द्वारा दानपत्र द्वारा अंतरण किये जाने की विधिक स्थिति को समझना अपेक्षित है।

Alienation: Gift

37. प्रकरण में हिन्दू संयुक्त परिवार के मुखिया/कर्ता की भूमिका, प्राधिकार एवं संपत्ति के अंतरण की शक्तियों की संकल्पना/अवधारणा को समझने के पश्चात सहदायक द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अपने हिस्से के दान द्वारा अंतरण की संकल्पना/अवधारणा को समझना आवश्यक है। इस संबंध में माननीय न्यायालयों द्वारा प्रतिपादित असंख्य न्यायिक दृष्टांतों के द्वारा सहदायक द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अपने हिस्से के दान द्वारा अंतरण की संकल्पना/अवधारणा की व्याख्या की गई है। इस श्रृंखला में कुछ महत्वपूर्ण न्यायिक दृष्टांतों द्वारा की गई विवेचना का उद्धरण प्रकरण में प्रासंगिक है। इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील 158/1953 बउनवान **Kamala Devi vs Bachu Lal Gupta** में दिनांक 29.01.1957 को दिये गये निर्णय में सहदायक द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अपने हिस्से के दान द्वारा अंतरण की संकल्पना/अवधारणा के संबंध में विवेचना की है। जिसके प्रासंगिक पैरा का उद्धरण निम्न प्रकार है:-

On an examination of the decisions referred to above, the following principles clearly emerge: (1) It is the imperative, religious duty and a moral obligation of a father, mother or other guardian to give a girl in marriage to a suitable husband; it is a duty which must be fulfilled to prevent degradation, and direct spiritual benefit is conferred upon the father by such a marriage. (2) A Hindu widow in possession of the estate of her deceased husband can make an alienation for religious acts which are not essential or obligatory but are still pious observances which conduce to the bliss of the deceased husband's soul. (3) In the case of essential or obligatory acts, if the income of the property or the property itself is not sufficient to cover the expenses, she is entitled to sell the whole of it; but for acts which are pious and which conduce to the bliss of the deceased husband's soul, she can alienate a reasonable portion of the property. (4) Gifts 'by a widow of landed property to her daughter or son-in-law on the occasion of the marriage or any ceremonies connected with the marriage, are well recognised in Hindu law. (5) If a promise is made of such a

gift for or at the time of the marriage, that promise may be fulfilled afterwards and it is not essential to make a gift at the time of the marriage but it, may be made afterwards in fulfilment of the promise. (6) Some decisions go to the length of holding that there is a moral or religious obligation of giving a portion of the joint family property for the benefit of the daughter and the son-in-law, and a gift made long after the marriage may be supported upon the ground that the gift when made fulfils that moral or religious obligation.

38. इसी प्रकार माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील 334-335 / 1960 बउनवान **Guramma Bhratar Chanbasappa Deshmukh ... vs Malappa** में दिनांक 29.08.1963 को दिये गये निर्णय में सहदायक द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अपने हिस्से के दान द्वारा अंतरण की संकल्पना/अवधारणा के संबंध में विवेचना की है। जिसके प्रासंगिक पैरा का उद्धरण निम्न प्रकार है:-

The next question is whether the two gifts were binding on the family. We shall now take the two gift deeds Exs. 370 and 371 executed by Chanbasappa-the former in favour of the 7th defendant and the latter in favour of the 8th defendant. The High Court, agreeing with the learned Civil Judge, set aside the gifts on the ground that the donor had no power to make a gift of the family property. Learned counsel for the legal representatives of the said defendants seeks to sustain the validity of the said two gifts. We shall consider the validity of the two gift deeds separately. Ex. 370 dated January 4, 1944, is a gift deed executed by Chanbasappa in favour of Channappa, the 7th defendant, in respect of immovable property valued at Rs. 1,500/-. The donee was described as the donor's relative. The gift was made in token of love for the services rendered by the donee to the donor during the latter's lifetime. The gift was made, as it was narrated in the document, out of love and affection for the donee. It is contended that the said gift was for pious purposes and, therefore, valid in law. Can it be said that a gift of this nature to a relative out of love and affection is a gift for "pious purposes" within the meaning of that expression in Hindu law? In Mitakshara, Ch. I, s. 1, v. 28, it is stated:

"Even a single individual may conclude a donation, mortgage, or sale of immovable property, during a season of distress, for the sake of the family and especially for pious purposes."

In support of his contention that pious purposes include a charitable purpose, learned counsel relies upon certain passages in Mukherjea's "Hindu Law of Religious and Charitable Trust", 2nd Edn. The learned author says at p. 12:

"In the Hindu system there is no line of demarcation between religion and charity. On the other hand charity is regarded as part of religion..... All the Hindu sages concur in holding that charitable gifts are pious acts par excellence, which bring appropriate rewards to the donor....."

The learned author proceeds to state, at p. 58 "Religious and charitable purposes have nowhere been defined by Hindu lawyers. It was said by Sir Subrahmanya Ayyar J. in Partha Sarathi Pillai v. Tiruvengada(1) that the expression "dharma" when applied to gifts means and includes according to Hindu text writers, what are known: as Isha and Purta works. As I have said already in the first lecture, no exhaustive list of such works has been drawn up by the Hindu lawgivers, and they include all acts of piety and benevolence whether sanctioned by Vedas or by the popular religion, the nature of the acts differing at different periods of Hindu religious history."

The learned author defines the words Isha and Purta briefly thus, at p. 10:

"By Isha is meant Vedic sacrifices, and rites and gifts in connection with the same; Purta on the other hand means and signifies other pious and charitable acts which are unconnected with any Srouta or Vedic sacrifice."

It may, therefore, be conceded that the expression "pious purposes" is wide enough, under certain circumstances, to take in charitable purposes though the scope of the latter purposes has nowhere been precisely drawn. But what we are concerned with in this case is the power of a manager to make a gift to an outsider of a joint family property. The scope of the limitations on that power has been fairly well settled by the decisions interpreting the relevant texts of Hindu law. The decisions of Hindu law sanctioned gifts to strangers by a manager of a joint Hindu family of a small extent of property for pious purposes. But no authority went so far, and none has been placed before us, to sustain such a gift to a stranger however much the donor was beholden to him on the ground that it was made out of charity. It must be remembered that the manager has no absolute power of disposal over joint Hindu family property. The Hindu law permits him to do so only within strict limits. We cannot extend the scope of the power on the basis of the wide interpretation given to the words "pious purposes" in Hindu law in a different context. In the circumstances, we hold that a gift to a stranger of a joint family property by the manager of the family is void.

xxx

The legal position may be summarized thus: The Hindu law texts conferred a right upon a daughter or a sister, as the case may be, to have a share in the family property at the time of partition. That right was lost by efflux of time. But it

became crystallized into a moral obligation. The father or his representative can make a valid gift, by way of reasonable provision for the maintenance of the daughter, regard being had to the financial and other relevant circumstances of the family. By custom or by convenience, such gifts are made at the time of marriage, but the right of the father or his representative to make such a gift is not confined to the marriage occasion. It is a moral obligation and it continues to subsist till it is discharged. Marriage is only a customary occasion for such a gift. But the obligation can be discharged at any time either during the lifetime of the father or thereafter. It is not possible to lay down a hard and fast rule, prescribing the quantitative limits of such a gift as that would depend on the facts of each case and it can only be decided by Courts, regard being had to the overall picture of the extent of the family estate, the number of daughters' to be provided for and other paramount charges and other similar circumstances. If the father is within his rights to make a gift of a reasonable extent of the family property for the maintenance of a daughter, it cannot be said that the said gift must be made only by one document or only at a single point of time. The validity or the reasonableness of a gift does not depend upon the plurality of documents but on the power of the father to make a gift and the reasonableness of the gift so made. If once the power is granted and the reasonableness of the gift is not disputed, the fact that two gift deeds were executed instead of one, cannot make the gift anythe- less a valid one.

39. इसी प्रकार माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील 618 / 1964 बउनवान ***Ammathayee Ammal vs Kumaresan*** में दिनांक 15.09.1966 को दिये गये निर्णय में सहदायक द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अपने हिस्से के दान द्वारा अंतरण की संकल्पना / अवधारणा के संबंध में विवेचना की है। जिसके प्रासंगिक पैरा का उद्धरण निम्न प्रकार है:-

Hindu law on the question of gifts of ancestral property is well-settled. So far as movable ancestral property is concerned, a gift out of affection may be made to a wife, to a daughter and even to a son, provided the gift is within reasonable limits. A gift for example of the whole or almost the whole of the ancestral movable property cannot be upheld as a gift through affection: (see Mulla's Hindu Law, 13th Edn. p. 252, para 225). But so far as immovable ancestral property is concerned the power of gift is much more circumscribed than in the case of movable ancestral property. A Hindu father or any other managing member has power to make a gift of ancestral immovable property within reasonable limits for "pious purposes", (see Mulla's Hindu Law, 13th Edn. para 226 p. 252). Now what is generally understood by "pious purposes" is gift for charitable and/or religious purposes. But this Court has extended the meaning of "pious purposes" to cases where a Hindu father makes a gift within reasonable limits of

immovable ancestral property to his daughter in fulfilment of an antenuptial promise made on the occasion of the settlement of the terms of her marriage, and the same can also be done by the mother in case the father is dead: [see Kamala Devi v. Bachu Lal Gupta.

40. इसी प्रकार माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील 258 / 1974 बउनवान **Thamma Venkata Subbamma (Dead) By L.R vs Thamma Rattamma** में दिनांक 06.05.1987 को दिये गये निर्णय में सहदायक द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अपने हिस्से के दान द्वारा अंतरण की संकल्पना/अवधारणा के संबंध में विवेचना की है। जिसके प्रासंगिक पैरा का उद्धरण निम्न प्रकार है:-

It was held that under the Hindu Law a voluntary alienation by gift of joint family property could not be made by an undivided coparcener, unless permitted by an express text. Thus, the cumulative effect, of Ponnusami's case and Baba's case (supra) is that a coparcener cannot make a gift of his undivided interest in the coparcenary property either in favour of a stranger or in favour of his relations.

There is a long catena of decisions holding that a gift by a coparcener of his undivided interest in the coparcenary property is void. It is not necessary to refer to all these decisions. Instead, we may refer to the following statement of law in Mayne's Hindu Law, Eleventh Edition, Article 382:-

"It is now equally well settled in all the Provinces that a gift or devise by a coparcener in a Mitakshara family of his undivided interest is wholly invalid A coparcener cannot make a gift of his undivided interest in the family property, movable or immovable, either to a stranger or to a relative except for purposes warranted by special texts."

We may also refer to a passage from Mulla's Hindu Law, Fifteenth Edition, Article 258, which is as follows:-

"Gift of undivided interest.-- (1) According to the Mitakshara law as applied in all the States, no coparcener can dispose of his undivided interest in coparcenary property by gift. Such transaction being void altogether there is no estoppel or other kind of personal bar which preclude the donor from asserting his right to recover the transferred property. He may, however, make a gift of his interest with the consent of the other coparceners."

It is submitted by Mr. P.P. Rao, learned Counsel appearing on behalf of the respondents, that no reason has been given in any of the above decisions why a coparcener is not

entitled to alienate his undivided interest in the coparcenary property by way of gift. The reason is, however, obvious. It has been already stated that an individual member of the joint Hindu family has no definite share in the coparcenary property. By an alienation of his undivided interest in the coparcenary property, a coparcener cannot deprive the other coparceners of their right to the property. The object of this strict rule against alienation by way of gift is to maintain the jointness of ownership and possession of the coparcenary property. It is true that there is no specific textual authority prohibiting an alienation by gift and the law in this regard has developed gradually, but that is for the purpose of preventing a joint Hindu family from being disintegrated. The rigor of this rule against alienation by gift has been to some extent relaxed by the Hindu Succession Act, 1956. Section 30 of the Act permits the disposition by way of will of a male Hindu in a Mitakshara coparcenary property. The most significant fact which may be noticed in this connection is that while the Legislature was aware of the strict rule against alienation by way of gift, it only relaxed the rule in favour of disposition by a will the interest of a male Hindu in a Mitakshara coparcenary property. The Legislature did not, therefore, deliberately provide for any gift by a coparcener of his undivided interest in the coparcenary property either to a stranger or to another coparcener. Therefore, the personal law of the Hindus, governed by Mitakshara School Of Hindu Law, is that a coparcener can dispose of his undivided interest in the coparcenary property by a will, but he cannot make a gift of such interest.

It is, however, a settled law that a coparcener can make a gift of his undivided interest in the coparcenary property to another coparcener or to a stranger with the prior consent of all other coparceners. Such a gift would be quite legal and valid.

41. इसी प्रकार माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील 598 / 2005 बउनवान **Baljinder Singh vs Rattan Singh** में दिनांक 05.08.2008 को दिये गये निर्णय में सहदायक द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अपने हिस्से के दान द्वारा अंतरण की संकल्पना / अवधारणा के संबंध में विवेचना की है। जिसके प्रासंगिक पैरा का उद्धरण निम्न प्रकार है:-

19. We may also refer to a passage from Mulla's Hindu Law, Seventeenth Edn., (Article 258), which is as follows:

"Gift of undivided interest- (1) According to Mitakshara law as applied in all the States, no coparcener can dispose of his undivided interest in coparcenary property by gift. Such transaction being void altogether there is no estoppel or other kind of personal bar which

precludes the donor from asserting his right to recover the transferred property. He may, however, make a gift of his interest with the consent of the other coparcener".

20. *In Mayne's Hindu Law, XIV Edn. It has been noted as follows:*

"Gifts of affection- *The father's power to make gifts through affection within reasonable limits of ancestral movable property has been fully recognized. In Ramalinga v Narayana (1922 (49) IA 168) the Privy Council held that "the father has undoubtedly the power under the Hindu Law of making within reasonable limits, gifts of movable property to a daughter".*

By Will- *But such gifts through affection of joint family property when they are by will, are invalid, because the right of the coparceners vests by survivorship at the moment of the testator's death, and there is accordingly nothing upon which the will can operate. In Subbarami v. Ramamma ((1920 (43) Mad 824) the Madras High Court held that a will made by a Hindu father bequeathing certain family properties for the maintenance of his wife was invalid as against his infant son through it would have been a proper provision if made by him, during his lifetime. This may be in a sense right. There is however no compelling logic in not regarding wills "as gifts to take effect upon death at least as to the property which they can transfer and the persons to whom it can be transferred". Convenience would seem rather to point to the extension to the sphere of Hindu Law of the general principle of jurisprudence that what a man can give by act inter vivos, he can give by will".*

42. इसी प्रकार माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील 2582 / 2010 बउनवान ***K.C.Laxmana vs K.C.Chandrappa Gowda*** में दिनांक 19.04.2022 को दिये गये निर्णय में सहदायक द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अपने हिस्से के दान द्वारा अंतरण की संकल्पना / अवधारणा के संबंध में विवेचना की है। जिसके प्रासंगिक पैरा का उद्धरण निम्न प्रकार है:-

12. It is trite law that Karta/Manager of a joint family property may alienate joint family property only in three situations, namely,

(i) legal necessity (ii) for the benefit of the estate and (iii) with the consent of all the coparceners of the family. In the

instant case, the alienation of the joint family property under Ex.P-1 was not with the consent of all the coparceners. It is settled law that where an alienation is not made with the consent of all the coparceners, it is voidable at the instance of the coparceners whose consent has not been obtained (See : Thimmaiah and Ors. Vs. Ningamma and Anr.1). Therefore, the alienation of the joint family property in favour of the second defendant was voidable at the instance of the plaintiff whose consent had not been obtained as a coparcener before the said alienation.

13. In the instant case, it is admitted by the second defendant that the settlement deed dated 22.03.1980 (Ex.P-1) is, in fact, a gift deed which was executed by the first defendant in favour of the second defendant 'out of love and affection' and by virtue of which the second defendant was given a portion of the joint family property. It is well-settled that a Hindu father or any other managing member of a HUF has power to make a gift of ancestral property only for a 'pious purpose' and what is understood by the term 'pious purpose' is a gift for charitable and/or religious purpose. Therefore, a deed of gift in regard to the ancestral property executed 'out of love and affection' does not come within the scope of the term 'pious purpose'. It is irrelevant if such gift or settlement was made by a donor, i.e. the first defendant, in favour of a donee who was raised by the donor without any relationship, i.e. the second defendant. The gift deed in the instant case is not for any charitable or religious purpose.

Alienation: Reasonableness of Gift

43. इसी प्रकार माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील 334-335 / 1960 बउनवान **Guramma Bhratar Chanbasappa Deshmukh ... vs Malappa** में दिनांक 29.08.1963 को दिये गये निर्णय में सहदायक द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अपने हिस्से के दान द्वारा अंतरण के औचित्य की संकल्पना / अवधारणा के संबंध में विवेचना की है। जिसके प्रासंगिक पैरा का उद्धरण निम्न प्रकार है:-

The Privy Council confirmed the finding of the High Court. In considering the relevant point, Mr. Ameer Ali observed at p. 173 thus:

"The father has undoubtedly the power under the Hindu law of making, within reasonable limits, gifts of movable property to a daughter. In one case the Board upheld the gift of a small share of immovable property on the ground that it was not shown to be unreasonable."

Venkataramana Rao J. in Sithamahalakshamma v. Kotayya(1) had to deal with the question of validity of a gift made by a Hindu father of a reasonable portion of ancestral immovable property to his daughter without reference to his son. Therein, the learned judge observed at p. 262:

"There can be no doubt that the father is under a moral obligation to make a gift of a reasonable portion of the family property as a marriage portion to his daughters on the occasion of their marriages. It has also been held that it is a continuing obligation till it is discharged by fulfillment thereof. It is on this principle a gift of a small portion of immovable property by a father has been held to be binding on the members of the joint family."

Adverting to the question of the extent of property he can gift, the learned Judge proceeded to state:

"The question whether a particular gift is reasonable or not will have to be judged according to the state of the family at the time of the gift, the extent of the family immovable property, the indebtedness -of the family, and the paramount charges which the family was under an obligation to provide for, and after having regard to these circumstances if the gift can be held to be reasonable, such a gift will be binding on the joint family members irrespective of the consent of the members of the family."

This decision was followed by Chandra Reddy J. of the Madras High Court in Annamalai v. Sundarathammal.

44. उपरोक्त न्यायिक दृष्टांतों के अवलोकन से सहदायक द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अपने हिस्से के दान द्वारा अंतरण की संकल्पना/अवधारणा स्पष्ट होती है। इस प्रकार सहदायक द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अपने हिस्से के दान द्वारा अंतरण की संकल्पना/अवधारणा को निम्न प्रकार समझा जा सकता है:-

संपत्ति का प्रकार	धारक	आधार	अंतरण
चल संपत्ति	सहदायिकी से अलग	प्यार व लगाव	अनुमत
		पवित्र उद्देश्य	अनुमत
	सहदायिकी के अंतर्गत	प्यार व लगाव	अनुमत
		पवित्र उद्देश्य	अनुमत
अचल संपत्ति	सहदायिकी से अलग	प्यार व लगाव	प्रतिबंधित
		पवित्र उद्देश्य	सशर्त अनुमत
	सहदायिकी के अंतर्गत	प्यार व लगाव	प्रतिबंधित
		पवित्र उद्देश्य	सशर्त अनुमत

45. प्रकरण में प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा प्रतिवादी संख्या 04-07 के पक्ष में किये गये दानपत्र के द्वारा अंतरण का सहदायक द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अपने हिस्से के

दान द्वारा अंतरण की संकल्पना/अवधारणा की उक्त विधिक स्थिति के संदर्भ में विवेचन किया जाना अपेक्षित है। पत्रावली के अवलोकन से ज्ञात होता है कि प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा मुतनाजा आराजी रकबा 35 बीघा में से 4/5 हिस्सा अर्थात 28 बीघा भूमि का जरिये पंजीबद्ध दानपत्र अपने पुत्रों प्रतिवादी संख्या 04-07 के पक्ष में दान कर दिया है। यहां यह उल्लेखनीय है कि हिन्दू विधि में एक सहदायक द्वारा सहदायक संपत्ति में पवित्र उद्देश्य के लिए ही दान किया जाना अनुमत है। प्रकरण में प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा मुतनाजा आराजी रकबा 35 बीघा में से 4/5 हिस्सा अर्थात 28 बीघा भूमि का जरिये पंजीबद्ध दानपत्र अपने पुत्रों प्रतिवादी संख्या 04-07 के पक्ष में किया गया दान किसी पवित्र उद्देश्य के लिये प्रतीत नहीं होता है। साथ ही कुल संपत्ति का 4/5 हिस्सा दान किया जाना दान की उपयुक्तता व औचित्य पर सवालिया प्रश्न उत्पन्न करता है। प्रकरण में प्रतीत होता है कि प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा मुतनाजा आराजी रकबा 35 बीघा में से 4/5 हिस्सा अर्थात 28 बीघा भूमि का जरिये पंजीबद्ध दानपत्र अपने पुत्रों प्रतिवादी संख्या 04-07 के पक्ष में किया गया दान पुत्री को अपने हक से वंचित करने के लिये किया गया है अथवा प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा मुतनाजा आराजी रकबा 35 बीघा में से 4/5 हिस्सा अर्थात 28 बीघा भूमि का जरिये पंजीबद्ध दानपत्र अपने पुत्रों प्रतिवादी संख्या 04-07 के पक्ष में किया गया दान पवित्र उद्देश्य के प्रयोजन से नहीं किया जा कर केवल प्यार व लगाव के प्रयोजन से किया गया है। उक्त प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा मुतनाजा आराजी रकबा 35 बीघा में से 4/5 हिस्सा अर्थात 28 बीघा भूमि का जरिये पंजीबद्ध दानपत्र अपने पुत्रों प्रतिवादी संख्या 04-07 के पक्ष में किया गया दान पुत्री को अपने हक से वंचित करने के लिये किया गया है अथवा प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा मुतनाजा आराजी रकबा 35 बीघा में से 4/5 हिस्सा अर्थात 28 बीघा भूमि का जरिये पंजीबद्ध दानपत्र अपने पुत्रों प्रतिवादी संख्या 04-07 के पक्ष में किया गया दान पवित्र उद्देश्य के प्रयोजन से नहीं किया जा कर केवल प्यार व लगाव के प्रयोजन से किया गया अंतरण हिन्दू विधि के अंतर्गत विधिमान्य नहीं है। इस प्रकार प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा मुतनाजा आराजी रकबा 35 बीघा में से 4/5 हिस्सा अर्थात 28 बीघा भूमि का जरिये पंजीबद्ध दानपत्र दिनांक 09.12.2020 को अपने पुत्रों प्रतिवादी संख्या 04-07 के पक्ष में किया गया दान विधिसंगत नहीं होने के कारण आरंभ से शून्य व अवैध प्रतीत होता है।

46. अब प्रकरण में पंजीकृत दस्तावेज के शून्यकरणीय व आरंभ से शून्य होने तथा राजस्व न्यायालय व सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार को लेकर विधि की स्थिति को समझना आवश्यक है।

Void : Voidable

47. इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील संख्या 598/2005 बउनवान **Baljinder Singh vs Rattan Singh** में दिनांक 05.08.2008 को दिये गये निर्णय में शून्य व शून्यकरणीय होने की संकल्पना/अवधारणा के संबंध में विवेचना की है। जिसके प्रासंगिक पैरा का उद्धरण निम्न प्रकार है:-

24. In Sadasivam v. K. Doraisamy (AIR 1996 SC 1724) it was found that when the father has executed sale deed in favour of a near relative and the intention to repay debt or legal necessity has not been proved as a sham transaction.

25. In Words and Phrases by Justice R.P. Sethi the expression 'void' and 'voidable' read as under:

"Void- Black's Law Dictionary gives the meaning of the word "void" as having different nuances in different connotations. One of them is of course "null or having no legal force or binding effect". And the other is "unable in law, to support the purpose for which it was intended". After referring to the nuances between void and voidable the lexicographer pointed out the following: "The word `void' in its strictest sense, means that which has no force and effect, is without legal efficacy, is incapable of being enforced by law, or has no legal or binding force, but frequently the word is used and construed as having the more liberal meaning of `voidable'. The word `void' is used in statute in the sense of utterly void so as to be incapable of ratification, and also in the sense of voidable and resort must be had to the rules of construction in many cases to determine in which sense the legislature intended to use it. An act or contract neither wrong in itself nor against public policy, which has been declared void by statute for the protection or benefit of a certain party, or class of parties, is voidable only". (Pankan Mehra and Anr. v. State of Maharashtra and Ors. (2000 (2) SCC 756).

Per Fazal Ali, J- The meaning of the word "void" is stated in Black's Law Dictionary (3rd Edn.) to be as follows:

"Null and void; ineffectual; nugatory; having no legal force or binding effect; unable in law to support the purpose for which it was intended; nugatory and ineffectual so that nothing can cure it; not valid". Keshavan Madhava Menon v. State of Bombay (1951 SCR 228).

The expression "void" has several facets. One type of void acts, transactions, decrees are those which are wholly without jurisdiction, ab initio void and for avoiding the same no declaration is necessary, law does not take any notice of the same and it can be disregarded in collateral proceeding or otherwise. Judicial Review of Administration Action, 5th Edn., para 5-044 (See also Judicial Remedies in Public Law at page 131; Dhurandhar Prasad Singh v. Jai Prakash University and Ors. (2001 (6) SCC 534) The other type of void act, e.g. may be transaction against a minor without being represented by a next friend. Such a transaction is a good transaction against the whole world. So far as the minor is concerned, if he decides to avoid the same and succeeds in avoiding it by taking recourse to appropriate preceding the transaction becomes void from the very beginning. Another type of void act may be one, which is not a nullity, but for avoiding the same, a declaration has to be made. (See Government of Orissa v Ashok Transport Agency and Ors (2002 (9) SCC 28) The meaning to be given to the word "void" in Article 13 of the Constitution is no longer res integra, for the matter stands

concluded by the majority decision of the Court in Keshavan Madhava Menon v. The State of Bombay (1951) SCR 228. We have to apply the ratio decidendi in that case to the facts of the present case. The impugned Act was a existing law at the time when the Constitution came into force. That existing law imposed on the exercise of the right guaranteed in the citizens of the India by Article 19(1)(g) restrictions which could not be justified as reasonable under clause (6) as it then stood and consequently under Article 13 (1) that existing Law became void "to the extent of such inconsistency". As explained in Keshavan Madhava Menon's case (supra) the Law became void in toto or for all purposes or for all times or for all persons but only "to the extent of such inconsistency", that is to say, to the extent it became inconsistent with the provisions of Part III which conferred the fundamental rights on the citizens. It did not become void independently of the existence of the rights guaranteed by Part III. (See Bhikaji Narain Dhakras and Ors. v. The State of Madhya Pradesh and Anr. (1955 (2) SCR 589).

The word "void" has a relative rather than an absolute meaning. It only conveys the idea that the order is invalid or illegal. In Halsbury's Laws of England, 4th Edn. (Re-issue) Vol. 1(1) in para 26, p.31 it is stated thus: "If an act of decision, or an order or other instrument is invalid, it should, in principle, be null and void for all purposes; and it has been said that there are no degrees of nullity. Even though such an act is wrong and lacking in jurisdiction, however, it subsists and remains fully effective unless and until it is set aside by a court of competent jurisdiction. Until its validity is challenged, its legality is preserved". (See State of Kerala v.

M.K. Kunhikannan Nambiar Manjeri Manikoth, Naduvil (dead) and ors. (1996 (1) SCC 435).

"Voidable act" is that which is a good act unless avoided, e.g. if a suit is filed for a declaration that a document is fraudulent, it is voidable as the apparent state of affairs is the real state of affairs and a party who alleges otherwise is oblige to prove it. If it is proved that the document is forged and fabricated and a declaration to that effect is given, a transaction becomes void from the very beginning. There may be voidable transaction which is required to be set aside and the same is avoided from the day it is so set aside and not any day prior to it. In cases, where legal effect of a document cannot be taken away without setting aside the same, it cannot be treated to be void but would be obviously voidable. Government of Orissa v. Ashok Transport Agency and Ors. (2002 (9) SCC 28)".

48. इसी प्रकार माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील संख्या 4481 / 2001 बउनवान **Dhurandhar Prasad Singh vs Jai Prakash University** में दिनांक 24.07.2001 को दिये गये निर्णय में शून्य व शून्यकरणीय होने की संकल्पना / अवधारणा के संबंध में विवेचना की है। जिसके प्रासंगिक पैरा का उद्धरण निम्न प्रकार है:-

The expressions void and voidable have been subject matter of consideration before English Courts times without number. In the case of Durayappah v. Fernando and others [1967] 2 All England Law Reports 152, the dissolution of municipal council by the minister was challenged. Question had arisen before the Privy Council as to whether a third party could challenge such a decision. It was held that if the decision was complete nullity, it could be challenged by anyone, anywhere. The Court observed at page 158 thus:-

The answer must depend essentially on whether the order of the Minister was a complete nullity or whether it was an order voidable only at the election of the council. If the former, it must follow that the council is still in office and that, if any councillor, ratepayer or other person having a legitimate interest in the conduct of the council likes to take the point, they are entitled to ask the court to declare that the council is still the duly elected council with all the powers and duties conferred on it by the Municipal Ordinance.

In the case of In re McC. (A minor) [1985] 1 Appeal Cases 528, the House of Lords followed the dictum of Lord Coke in the Marshalsea Case quoting a passage from the said judgment which was rendered in 1613 where it was laid down that where the whole proceeding is coram non judice which means void ab initio, the action will lie without any regard to the precept or process. The Court laid down at page 536 thus:-

Consider two extremes of a very wide spectrum. Jurisdiction meant one thing to Lord Coke in 1613 when he said in the Marshalsea Case (1613) 10 Co. Rep.68b, at p.76a:

when a court has jurisdiction of the cause, and, proceeds in verso ordine or erroneously, there the party who sues, or the officer or minister of the court who executes the precept or process of the court, no action lies against them. But when the court has not jurisdiction of the cause, there the whole proceeding is coram non judice, and actions will lie against them without any regard of the precept or process. The Court of the Marshalsea in that case acted without jurisdiction because, its jurisdiction being limited to members of the Kings household, it entertained a suit between two citizens neither of whom was a member of the Kings household. Arising out of those proceedings a party arrested by process of the Marshalsea could maintain an action for false imprisonment against, inter alios, the Marshal who directed the execution of the process. This is but an early and perhaps the most quoted example of the application of a principle illustrated by many later cases where the question whether a court or other tribunal of

limited jurisdiction has acted without jurisdiction (coram non judge) can be determined by considering whether at the outset of the proceedings that court had jurisdiction to entertain the proceedings at all. So much is implicit in the Lord Cokes phrase jurisdiction of the cause.

In another decision, in the case of Director of Public Prosecutions v. Head [1959] Appeal Cases 83, House of Lords was considering validity of an order passed by Secretary of the State in appeal preferred against judgment of acquittal passed in a criminal case. The Court of Criminal Appeal quashed the conviction on the ground that the aforesaid order of Secretary was null and void and while upholding the decision of the Court of Criminal Appeal, the House of Lords observed at page 111 thus:-

This contention seems to me to raise the whole question of void or voidable: for if the original order was void, it would in law be a nullity. There would be no need for an order to quash it. It would be automatically null and void without more ado. The continuation orders would be nullities too, because you cannot continue a nullity. The licence to Miss Henderson would be a nullity. So would all the dealings with her property under Section 64 of the Act of 1913. None of the orders would be admissible in evidence. The Secretary of State would, I fancy, be liable in damages for all of the 10 years during which she was unlawfully detained, since it could all be said to flow from his negligent act; see section 16 of the Mental Treatment Act, 1930.

But if the original order was only voidable, then it would not be automatically void. Something would have to be done to avoid it. There would have to be an application to the High Court for certiorari to quash it.

This question was examined by Court of Appeal in the case of R. v. Paddington Valuation Officer and another, Ex parte Peachey Property Corporation, Ltd. [1965] 2 All England Law Reports 836 where the valuation list was challenged on the ground that the same was void altogether. On these facts, Lord Denning, M.R. laid down the law observing at page 841 thus:-

It is necessary to distinguish between two kinds of invalidity. The one kind is where the invalidity is so grave that the list is a nullity altogether. In which case there is no need for an order to quash it. It is automatically null and void without more ado. The other kind is when the invalidity does not make the list void altogether, but only voidable. In that case it stands unless and until it is set aside. In the present case the valuation list is not, and never has been, a nullity. At most the first respondent- acting within his jurisdiction-exercised that jurisdiction erroneously. That makes the list voidable and not void. It remains good until it is set aside.

De Smith, Woolf and Jowell in their treatise Judicial Review of Administrative Action, Fifth Edition, paragraph 5-044, has summarised the concept of void and voidable as

follows: Behind the simple dichotomy of void and voidable acts (invalid and valid until declared to be invalid) lurk terminological and conceptual problems of excruciating complexity. The problems arose from the premise that if an act, order or decision is ultra vires in the sense of outside jurisdiction, it was said to be invalid, or null and void. If it is intra vires it was, of course, valid. If it is flawed by an error perpetrated within the area of authority or jurisdiction, it was usually said to be voidable; that is, valid till set aside on appeal or in the past quashed by certiorari for error of law on the face of the record. Clive Lewis in his works Judicial Remedies in Public Law at page 131 has explained the expressions void and voidable as follows:-

A challenge to the validity of an act may be by direct action or by way of collateral or indirect challenge. A direct action is one where the principal purpose of the action is to establish the invalidity. This will usually be by way of an application for judicial review or by use of any statutory mechanism for appeal or review. Collateral challenges arise when the invalidity is raised in the course of some other proceedings, the purpose of which is not to establish invalidity but where questions of validity become relevant. Thus the expressions void and voidable have been subject matter of consideration on innumerable occasions by courts. The expression void has several facets. One type of void acts, transactions, decrees are those which are wholly without jurisdiction, ab initio void and for avoiding the same no declaration is necessary, law does not take any notice of the same and it can be disregarded in collateral proceeding or otherwise. The other type of void act, e.g., may be transaction against a minor without being represented by a next friend. Such a transaction is good transaction against the whole world. So far the minor is concerned, if he decides to avoid the same and succeeds in avoiding it by taking recourse to appropriate proceeding the transaction becomes void from the very beginning. Another type of void act may be which is not a nullity but for avoiding the same a declaration has to be made. Voidable act is that which is a good act unless avoided, e.g., if a suit is filed for a declaration that a document is fraudulent and/or forged and fabricated, it is voidable as apparent state of affairs is real state of affairs and a party who alleges otherwise is obliged to prove it. If it is proved that the document is forged and fabricated and a declaration to that effect is given a transaction becomes void from the very beginning. There may be a voidable transaction which is required to be set aside and the same is avoided from the day it is so set aside and not any day prior to it. In cases, where legal effect of a document cannot be taken away without setting aside the same, it cannot be treated to be void but would be obviously voidable.

49. प्रकरण में शून्य व शून्यकरणीय होने की संकल्पना/अवधारणा की अवधारणा को समझने के पश्चात पंजीकृत दस्तावेज के शून्य व शून्यकरणीय होने के आधार पर सिविल न्यायालय एवं राजस्व न्यायालय के क्षेत्राधिकार के विवाद के संबंध में कानूनन स्थिति की स्पष्टता को समझना आवश्यक है। इस संबंध में माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय जयपुर द्वारा सिविल प्रथम अपील संख्या 330 / 2010 बउनवान **Ram Kripal Dasji Charitable Trust vs Phool Chand** में दिनांक 29.02.2012 को दिये गये निर्णय में पंजीकृत दस्तावेज के शून्य व शून्यकरणीय होने के आधार पर सिविल न्यायालय एवं राजस्व न्यायालय के क्षेत्राधिकार के विवाद के संबंध में विवेचना की है। जिसके प्रासंगिक पैरा का उद्धरण निम्न प्रकार है:-

11. (.....)

(vi) It is well settled that the question of jurisdiction namely whether a suit is exclusively triable by a revenue court or a Civil Court can take cognizance of it has to be decided on the allegations made in the plaint. It is also further settled that it is the substance of the plaint and the true nature of the suit that is to be seen to determine the question of jurisdiction. If in substance the relief claimed is one which the revenue court alone is entitled to give, the jurisdiction of the civil court will be ousted even though it may require the revenue court to incidentally determine some ancillary facts. In order to determine the true nature of the relief claimed in a suit, the pith and substance and not the form in which the relief may be couched has to be considered. Each case has to be examined on its own particular facts and no universal rule can be applicable to every case.

.xxx

In my view unless a clear finding to that effect is given, the relief claimed by the appellant cannot be granted. Under the provisions of Rajasthan Tenancy Act, declaration and permanent injunction regarding an agricultural land can be granted only by a revenue court. It cannot be disputed that a suit for declaration of tenancy rights regarding an agricultural land has to be filed under Section 88 whereas a suit for permanent injunction has to be filed under Section 188 of the Rajasthan Tenancy Act. Section 207 of the Rajasthan Tenancy Act provides that all suits of the nature specified in the III Schedule of the Act shall be heard and determined by a revenue court and no court other than a revenue court shall take cognizance of any such suit. A suit for declaration finds place in Item No.5 whereas suit for permanent injunction finds place in Item No.23 C of the III Schedule. It is thus, very much clear that the present suit was clearly barred by law as Section 207 of the Rajasthan Tenancy Act bars such a suit from being taken cognizance and considered by a court other than a revenue court. The learned trial Court has rightly arrived at a conclusion that the suit is not entertainable by a civil Court.

50. इसी प्रकार माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय जोधपुर द्वारा सिविल रिवीजन संख्या 137 / 2015 बउनवान **Hasti Cement Pvt. Ltd. & Anr vs Sandeep Charan** में दिनांक 07.03.2018 को दिये गये निर्णय में पंजीकृत दस्तावेज के शून्य व शून्यकरणीय होने

के आधार पर सिविल न्यायालय एवं राजस्व न्यायालय के क्षेत्राधिकार के विवाद के संबंध में विवेचना की है। जिसके प्रासंगिक पैरा का उद्धरण निम्न प्रकार है:-

From what has been noticed hereinbefore, it can be safely concluded that if the allegation in the plaint/substance of the allegations in the plaint allege the instrument to be void and no cancellation is required and without seeking such cancellation the relief of declaration pertaining to tenancy rights with regard to the agricultural land in question can be obtained by the plaintiff, only the revenue courts would have jurisdiction to deal with the subject matter of the suit and consequently the jurisdiction of civil courts would be barred. However, if the allegations made in the plaint make out a case of document being voidable, relief of cancellation of such a voidable document can only be granted by civil court and irrespective of the fact that the instrument pertains to agricultural land, the suit would not be barred under Section 207 of the Tenancy Act. Therefore, the trial court in each case, where a issue in this regard is raised, based on the stage of the suit i.e. either based on the plaint averments or the evidence available on record would have to come to a conclusion as to whether the facts as alleged, if established or as established in a case where evidence has been led makes the instrument void or voidable and decide accordingly.

The fact that even in a case of a void document a relief of declaration in this regard has been sought, as laid down in the case of Rukmani (supra) once the declaration about status of Tenancy rights is granted, the consequential relief to the effect that the instrument in question is void and ineffective can always be granted by the revenue court.

51. इस प्रकार उपरोक्त न्यायिक दृष्टांतों के अवलोकन से विवादित संपत्ति पर खातेदारी अधिकार निहित होने व विवादित संपत्ति का पंजीकृत दस्तावेज द्वारा अंतरण किए जाने की स्थिति में राजस्व न्यायालय व सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार के मध्य संशय की स्थिति को स्पष्ट करते हुए निम्न प्रकार कानूनन स्थिति स्पष्ट की गई है:-

1. पंजीकृत दस्तावेज के आरंभ से शून्य होने की स्थिति में राजस्व न्यायालय से अनुतोष प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही पंजीकृत दस्तावेज के शून्यकरणीय होने की स्थिति में केवल सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार होता है।
2. अगर वादपत्र में विवादित संपत्ति के अंतरण के पंजीकृत दस्तावेज को निरस्त करवाने का मुख्य अनुतोष है तथा अन्य अनुतोष आनुषांगिक है उस स्थिति में केवल सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार होता है।
3. अगर वादपत्र में विवादित संपत्ति पर खातेदारी अधिकार की घोषणा का अनुतोष मुख्य अनुतोष है तथा विवादित संपत्ति के अंतरण के पंजीकृत दस्तावेज को निरस्त करवाने का

आनुषांगिक अनुतोष है उस स्थिति में केवल राजस्व न्यायालय का क्षेत्राधिकार होता है।

52. इसी प्रकार माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील संख्या 1269-1270 / 2019 बउनवान *Pyarelal vs Shubhendra Pilania (Minor)* में दिनांक 29.01.2019 को दिये गये निर्णय में पंजीकृत दस्तावेज के शून्य व शून्यकरणीय होने के आधार पर सिविल न्यायालय एवं राजस्व न्यायालय के क्षेत्राधिकार के विवाद के संबंध में विवेचना की है। जिसके प्रासंगिक पैरा का उद्धरण निम्न प्रकार है:-

11 Section 9 of the Code of Civil Procedure provides thus:

“9. Courts to try all civil suits unless barred - The Courts shall (subject to the provisions herein contained) have jurisdiction to try all suits of a civil nature excepting suits of which their cognizance is either expressly or impliedly barred.

Explanation I - A suit in which the right to property or to an office is contested is a suit of a civil nature, notwithstanding that such right may depend entirely on the decision of questions as to religious rites or ceremonies.

Explanation II - For the purposes of this section, it is immaterial whether or not any fees are attached to the office referred to in Explanation I or whether or not such office is attached to a particular place.” Section 9 empowers civil courts to try all suits of a civil nature unless expressly or impliedly barred by any statute.

12 Section 256 of the Tenancy Act provides thus:

“256. Bar to jurisdiction of civil courts — (i) Save as otherwise provided specifically by or under this Act, no suit or proceeding shall lie in any civil court with respect to any matter arising under this Act or the rules made thereunder, for which a remedy by way of suit, application, appeal or otherwise is provided therein.

(2) Save as aforesaid no order passed by the State Government or by any revenue court or officer in exercise of the powers conferred by this Act or the rules made thereunder, shall be liable to be questioned in any civil court.” Section 256 bars the jurisdiction of civil courts, save as otherwise provided under the Tenancy Act. Civil courts are expressly barred from trying a suit or proceeding with respect to matters arising under the Tenancy Act or rules made under it for which a remedy by way of a

suit, application, appeal or otherwise is provided in the Tenancy Act.

13 Section 207 of the Tenancy Act provides thus:

“207. Suits and applications cognizable by revenue court only— (1) All suits and applications of the nature specified in the Third Schedule shall be heard and determined by a revenue court.

(2) No court other than a revenue court shall take cognizance of any such suit or application or of any suit or application based on a cause of action in respect of which any relief could be obtained by means of any such suit or application.

Explanation.— If the cause of action is one in respect of which relief might be granted by the revenue court, it is immaterial that the relief asked for from the civil court is greater than, or additional to, or is not identical with, that which the revenue court could have granted.” Section 207 of the Tenancy Act states that no court other than a revenue court shall take cognizance of suits and applications of the nature specified in the Third Schedule. Such suits can be heard and determined by a revenue court which has exclusive jurisdiction. The explanation clarifies that if the cause of action is one in respect of which relief may be granted by the revenue court, then it is immaterial that a relief sought from the civil court is greater than, in addition to or not identical to the relief sought from the revenue court. Where a suit is of a nature specified in any of the provisions of the Third Schedule, the bar under Section 256 is attracted and the revenue courts have exclusive jurisdiction to try the suit.

14 In *Bank of Baroda v Moti Bhai*, a two judge Bench of this Court dealt with the question of jurisdiction under Sections 207 and 256 of the Tenancy Act. A bank had sanctioned a demand loan facility to the respondent for which the respondent executed a promissory note and a simple mortgage in favour of the bank. On his failure to repay the loan, the Bank instituted a suit in the civil court for recovery. The respondent raised a preliminary objection that the suit was essentially one for enforcing the mortgage and that the revenue court had the exclusive jurisdiction to entertain the suit by reason of the provisions contained in the Tenancy Act. The Trial court dismissed the objection. Allowing the revision filed by the respondent, the High Court held that that the mortgage deed in respect of

agricultural lands formed an essential part of the cause of action. Upon an analysis of Sections 207 and 256 of the Tenancy Act, a two judge Bench of this Court set aside the judgment of the High Court with the following reasons:

“5. A combined reading of these two sections would show that the jurisdiction of civil courts is barred only in respect of suits and applications of the nature specified in the Third Schedule to the Act and in respect of suits or applications based on a cause of action in respect of which any relief could be obtained by means of a suit or application of the nature specified in the Third Schedule. The civil court has no jurisdiction to entertain a suit or proceeding with respect to any matter arising under the Act or the Rules made thereunder, provided that a remedy by way of a suit, application or appeal or otherwise is provided in the Act. A loan given by a Bank to an agriculturist, which is in the nature of a commercial transaction, is outside the contemplation of the Act and can, by no stretch of imagination, be said to be in respect of any matter arising under the Act... The business of the Bank, in so far as lending transactions are concerned, is not to lend moneys on mortgages but the business is to lend moneys.

8. On the question of jurisdiction, one must always have regard to the substance of the matter and not to the form of the suit. If the matter is approached from that point of view, it would be clear that, primarily and basically, the suit filed by the Bank is one for recovering the amount which is due to it from the respondents on the basis of the promissory note executed by respondent 1 and the guarantee given by respondents 2 and 3.” (Emphasis supplied) Section 207 read with Section 256 of the Tenancy Act bars the jurisdiction of the civil courts in respect of suits and applications of the nature specified in the Third Schedule to the Act. The question before us is whether the relief claimed by the appellant can be granted exclusively by a revenue court under the provisions of the Tenancy Act.

15 Section 88 of the Tenancy Act provides thus:

“88. Suits for declaration of right:- (1) Any person claiming to be a tenant or a co-tenant may sue for a declaration that he is a tenant or for a declaration of his share in such joint tenancy.

(2) A tenant of Khudkasht may sue for a declaration that he is such a tenant.

(3) A sub-tenant may sue the person from whom he holds for declaration that he is a sub-tenant.

(4) A landholder other than a State Government may sue a person claiming to be a tenant or co-tenant of a holding or a tenant of Khudkasht or

a sub-tenant for a declaration of the right of such person.”

Sl. No. 5 of the Third Schedule provides thus:

“THE THIRD SCHEDULE Suits, Applications and Appeals under the Act (See Sections 207, 214, 215 & 217) S. Section Description of suit, application or Period of Time Proper Court/ No. of Act appeal limitation from Court Fees Officer which competent period to dispose begins to of run

**“THE THIRD SCHEDULE
Suits, Applications and Appeals under the Act
(See Sections 207, 214, 215 & 217)**

S.No.	Section of Act	Description of suit, application or appeal	Period of limitation	Time from which period begins to run	Proper Court Fees	Court/Officer competent to dispose of
5.	88	Suit for declaration of the plaintiffs right :- (i) as a tenant, or (ii) as a tenant of khudkasht, or (iii) as a sub-tenant, or (iv) for a share in a joint tenancy		None	One rupee	Assistant Collector

Sl. No. 5 in the Third Schedule read with Section 207 of the Tenancy Act stipulates that a suit for the declaration of a right provided in Section 88 would lie before a revenue court. In a suit where the relief sought for is the declaration of the right stipulated in Section 88, Sections 207 and 256 read with the Third Schedule bar the jurisdiction of civil courts and vest jurisdiction exclusively with a revenue court.

53. इस प्रकार उपरोक्त न्यायिक दृष्टांतों के अवलोकन से विवादित संपत्ति पर खातेदारी अधिकार निहित होने व विवादित संपत्ति का पंजीकृत दस्तावेज द्वारा अंतरण किए जाने की स्थिति में राजस्व न्यायालय व सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार के मध्य संशय की स्थिति को स्पष्ट करते हुए निम्न प्रकार कानूनन स्थिति स्पष्ट की गई है:-

1. राजस्व न्यायालय से विवादित संपत्ति पर खातेदारी अधिकार की घोषणा प्राप्त करने के पश्चात ही विवादित संपत्ति के अंतरण के पंजीकृत दस्तावेज को निरस्त करवाने बाबत सिविल न्यायालय में अनुतोष प्राप्त किया जा सकता है।

54. इस प्रकार उपरोक्त न्यायिक दृष्टांत के अवलोकन से स्पष्ट है कि अगर वादपत्र में विवादित संपत्ति पर खातेदारी अधिकार की घोषणा का अनुतोष मुख्य अनुतोष है तथा विवादित संपत्ति के अंतरण के पंजीकृत दस्तावेज को निरस्त करवाने का आनुषंगिक अनुतोष है उस स्थिति में केवल राजस्व न्यायालय का क्षेत्राधिकार होता है। उक्त विधि की स्थिति के संबंध में प्रकरण के तथ्यों का विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है।

55. प्रकरण मे इस संबंध में प्रतिवादी का अभिकथन है कि मुतनाजा आराजी के पंजीबद्ध दान पत्र दिनांक 09.12.2020 के द्वारा अंतरण किये जाने से प्रतिवादी संख्या 04-07 के पक्ष में खातेदारी अधिकारों की घोषणा की जावे। इस संबंध मे प्रकरण मे तनकी संख्या 01 के वादी के पक्ष मे स्वीकार होने से मुतनाजा आराजी पर वादी का हक व हिस्सा निर्धारित हो गया है। प्रकरण मे मुतनाजा आराजी पर वादी के हक व हिस्से से प्रभावित प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा प्रतिवादी संख्या 04-07 के पक्ष मे निष्पादित दान पत्र दिनांक 09.12.2020 आरंभ से अवैध, शुन्य व निष्प्रभावी घोषित किया जाना उचित प्रतीत होता है। इस प्रकार तनकी संख्या 03 को साबित करने मे असफल रहे है। इस प्रकार तनकी संख्या 03 प्रतिवादी के विरुद्ध स्वीकार की जाती है।

56. प्रकरण में अब तनकी संख्या 02 पर विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है। प्रकरण मे तनकी संख्या 02 निम्न प्रकार है:-

2. आया वादीया हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 के तहत विधिक वारिस होने के आधार पर मुतनाजा आराजी पर मुताबिक हिस्सा खातेदारी अधिकारों की घोषणा प्राप्त करने के आधार पर विरुद्ध प्रतिवादी मुताबिक वादपत्र वर्णित अनुतोष स्थाई निषेधाज्ञा प्राप्त करने के अधिकारी है।

.....वादी

57. प्रकरण का अवलोकन करने पर प्रतीत होता है कि तनकी संख्या 02 खाता स्थाई निषेधाज्ञा से संबंधित है। प्रकरण में वादी के अनुतोष के विवेचन हेतु तथ्यों का गहन विश्लेषण से पूर्व राजस्थान काश्तकारी अधिनियम-1955 की धारा-188 का उद्धरण यहाँ प्रतीत होता है। जो कि निम्न प्रकार है:-

188. Injunction against wrongful ejection—

(1) Any tenant whose right to or enjoyment of the whole or a part of his holding is invaded or threatened to be invaded by his landholder or any other person may bring a suit for the grant of a perpetual injunction.

(2) The court may after making the necessary enquiry grant a perpetual injunction in the following cases, namely-

(a) if there exist no standard for ascertaining the actual damage caused or likely to be caused by the invasion;

(b) if the invasion is such that pecuniary compensation does not afford adequate relief;

(c) where it is probable that pecuniary compensation cannot be got for the invasion.

(d) where the injunction is necessary to prevent a multiplicity of proceedings.

58. उक्त राजस्थान काश्तकारी अधिनियम-1955 की धारा-188 के अवलोकन से स्पष्ट है कि धारा-188 के अन्तर्गत किसी खातेदारी आराजी पर खातेदारी अधिकारों की आमदरफत में किसी प्रकार का व्यवधान/अतिक्रमण किया जा रहा हो/किया जाने वाला हो उस स्थिति में व्यवधान उत्पन्न/अतिक्रमण करने वाले व्यक्ति को स्थाई निषेधाज्ञा से पाबंद किए जाने के प्रावधान बनाए गए है। राजस्थान काश्तकारी अधिनियम-1955 की धारा-188 की उपधारा-2 में स्थाई निषेधाज्ञा जारी किए जाने हेतु निम्न चार परिस्थितियां बताई गई है:-

परिस्थिति	विवरण
-----------	-------

1.	जब हो रहे/होने वाले संभावित अतिक्रमण/व्यवधान/घुसपैठ से होने वाले नुकसान के आंकलन हेतु कोई मानक/मापदण्ड अस्तित्व में नहीं हो।
2.	जब अतिक्रमण/व्यवधान/घुसपैठ इस प्रकार का हो कि नुकसान की आर्थिक भरपाई/क्षतिपूर्ति पर्याप्त राहत/संतुष्टि प्रदान नहीं करता हो।
3.	जब इस तथ्य की संभावना हो कि अतिक्रमण/व्यवधान/घुसपैठ से होने वाले नुकसान की आर्थिक भरपाई/क्षतिपूर्ति की प्रदानगी संभव नहीं होगी।
4.	जब निषेधाज्ञा राजस्व विवादों की बहुलता को रोकने हेतु आवश्यक हो।

59. उक्त विधिक प्रावधानों के परिप्रेक्ष्य में प्रकरण का विश्लेषण किया जाना आवश्यक है। प्रकरण में वादी का तनकी संख्या 01 स्वीकार होने के पश्चात् मुतनाजा आराजी पर वादी का संयुक्त काश्तकार घोषित होने के आधार पर वादी की संयुक्त खातेदारी होना पूर्ण रूप से साबित होती है। अतः मुतनाजा आराजी पर मुताबिक हिस्सा वादी का संयुक्त स्वामित्व अविवादित है। परंतु राजस्व रिकॉर्ड में संयुक्त खातेदारी होने से वादी के किसी निश्चित भू-भाग पर बिना विधिक विभाजन करवाये कब्जे के बारे में कथन किया जाना कानूनन अनुचित है। इस कारण मुतनाजा आराजी पर वादी की संयुक्त खातेदारी आराजी होने के कारण वादी के किसी निश्चित भू-भाग पर बिना विधिक विभाजन करवाये कब्जे के बारे में संशय होने के कारण सुविधा व न्याय का संतुलन वादी के पक्ष में होना स्पष्ट नहीं है। अंत में प्रार्थी को अपूरणीय क्षति साबित करने से पूर्व संयुक्त आराजी का विधिक विभाजन करवाया जाना अपरिहार्य शर्त है। इस प्रकार अन्त में उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वादीगण द्वितीय अनुतोष प्रतिवादीगण के विरुद्ध संयुक्त आराजी का विधिक विभाजन करवाये बिना स्थाई निषेधाज्ञा प्राप्त करने के अधिकारी नहीं है। इस प्रकार तनकी संख्या 02 को साबित करने में वादी असफल रहे हैं। इस प्रकार तनकी संख्या 02 वादी के विरुद्ध फैसल की जाती है।

60. इस प्रकार प्रकरण में उपर्युक्त विश्लेषण अनुसार न्यायालय अपने विनम्र मत में प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा प्रतिवादी संख्या 04-07 के पक्ष में जरिये पंजीबद्ध दानपत्र दिनांक 09.12.2020 के द्वारा अंतरण को हिन्दू विधि के अंतर्गत अमान्य होने के कारण आरंभ से शून्य व अवैध, निष्प्रभावी होने के आधार पर पैतृक एवं सहदायिकी संपत्ति मुतनाजा आराजी खसरा संख्या 46/2, 52, 53/6 कुल रकबा 35-05 बीघा मौजा आलपुरा तहसील गुड़ामालानी पर हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956 की धारा-06 के तहत वादी को 1/11 हिस्से का हक निहित होना उचित पाता है। अतः

आदेश है कि

वादीगण का दावा बाबत इस्तकरारहक्क स्वीकार किया जाकर आराजी खसरा संख्या 46/2, 52, 53/6 कुल रकबा 35-05 बीघा मौजा आलपुरा तहसील गुड़ामालानी पर वादी को 1/11 हिस्से का खातेदार घोषित किया जाता है।

निर्णय की पृथक से पर्चा डिक्री तैयार की जाये।

मेथो बनाम खेताराम

2020/00327

निर्णय दिनांक:-26.12.2025

आज 26.12.2025 यह निर्णय मेरे द्वारा खुले न्यायालय में सुनाया जाकर हस्ताक्षर एवं मोहर युक्त जारी किया गया।

(केशव कुमार मीना आर.ए.एस)

सहायक कलक्टर

गुढामालानी-बाङमेर





न्यायालय

सहायक कलक्टर/उपखण्ड अधिकारी

गुढामालानी-बाड़मेर

(पीठासीन अधिकारी -केशव कुमार मीना आर.ए.एस.)

वाद संख्या:-2020 / 00327

दर्ज तिथि:-04.12.2020

1. मेथोदेवी पुत्री खेताराम पत्नी पीराराम
जाति जाट निवासी आलपुरा तहसील गुड़ामालानी।

.....वादीगण

बनाम

1. खेताराम पुत्र डूंगराराम
जाति जाट निवासी आलपुरा तहसील गुड़ामालानी जिला बाड़मेर।
2. मैनेजर एस0बी0बी0जे बैंक शाखा गुड़ामालानी
3. राजस्थान सरकार जरिये तहसीलदार गुड़ामालानी
4. हनुमानराम पुत्र खेताराम
5. दुर्गाराम पुत्र खेताराम
6. लिखमाराम पुत्र खेताराम
7. कृष्ण कुमार पुत्र खेताराम नाबालिग की कुदरती वलिदा माता झीमोदेवी पत्नी खेताराम
जाति जाट निवासी आपलरु तहसील गुड़ामालानी जिला बाड़मेर।

.....प्रतिवादीगण

उपस्थित अधिवक्ता

वादी:-श्री हरीश चौधरी

प्रतिवादी:-जगदीश विश्नोई

राजस्व वाद अन्तर्गत धारा-88, 188

राजस्थान काश्तकारी अधि0-1955

---:पर्चा डिक्री:-

वादीगण का दावा बाबत इस्तकरारहक्क स्वीकार किया जाकर आराजी खसरा संख्या 46/2, 52, 53/6 कुल रकबा 35-05 बीघा मौजा आलपुरा तहसील गुड़ामालानी पर वादी को 1/11 हिस्से का खातेदार घोषित किया जाता है।

यह पर्चा-डिक्री पालनार्थ हेतु तहसीलदार गुड़ामालानी को भिजवाई जावें। आदेश जारी हो। पक्षकारान अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे। यह पर्चा-डिक्री आज दिनांक 26.12.2025 को मेरे द्वारा लिखवाई जाकर हस्ताक्षर एवं मुहर युक्त जारी की जाकर खुले न्यायालय में सुनाई गई।

(केशव कुमार मीना आर.ए.एस)

सहायक कलक्टर

गुढामालानी-बाड़मेर